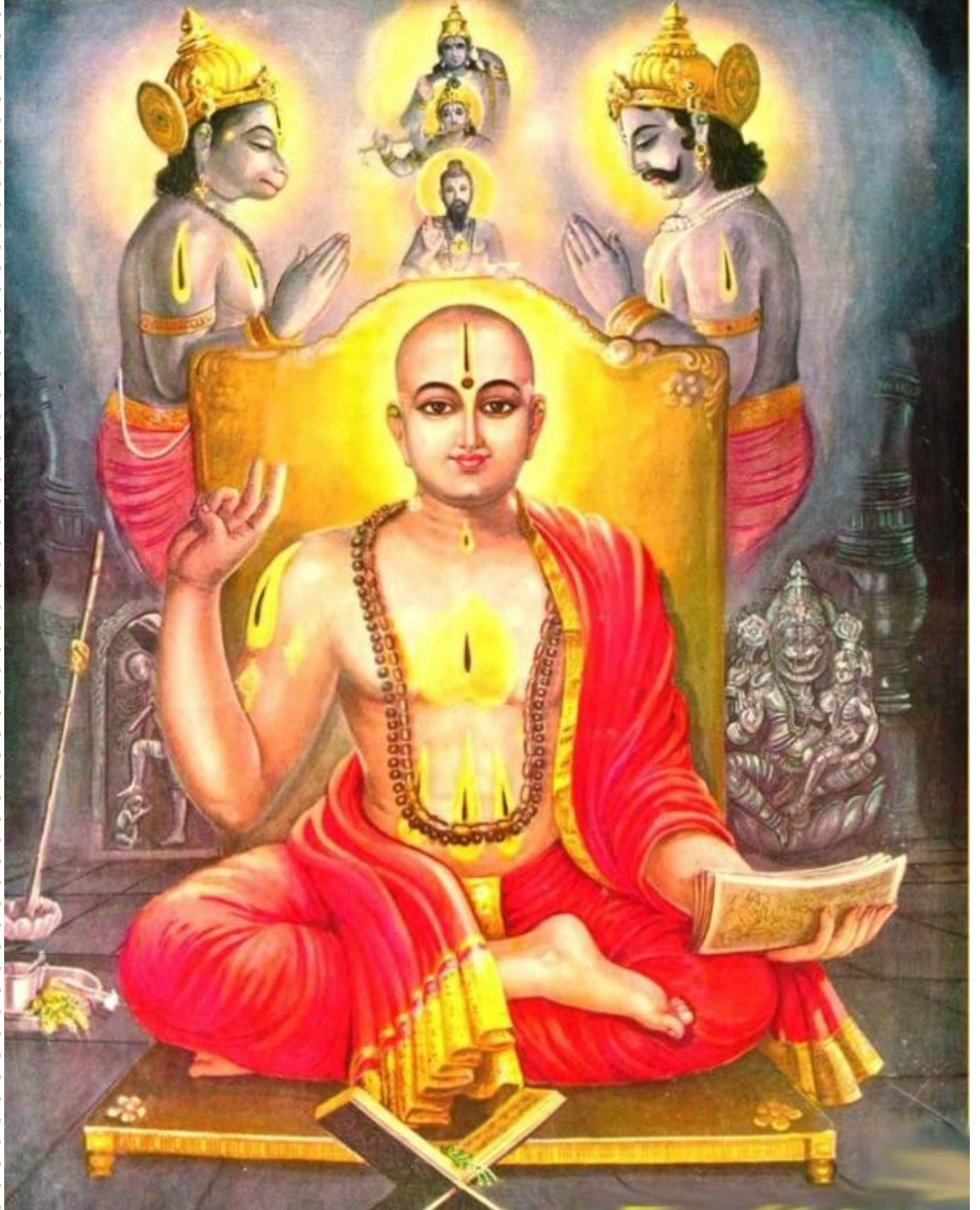


ಶ್ರೀಮದಾನಂದತೀರ್ಥಭಗವತ್ಪಾದಾಚಾರ್ಯಃ



Tracking:

sr	Date	Remarks	By
1	19/07/2012	Typing started on	H K srinivasa Rao
2	24/08/2012	Typing Ended on	H K srinivasa Rao
3	08/01/2013	I Proof Reading	H K srinivasaRao Venugopal M s Narahari Rattihalli B s Pavanshreesha
3	20/08/2013	Published	H K srinivasa Rao

॥ ಶ್ರೀ ಹಯವದನ ರಂಗವಿಠಲ ಗೋಪೀನಾಥೋ ವಿಜಯತೇ ॥

Blessed by Lord and with His divine grace, we are pleased to publish this Magnanimous Work of Sri Acharya Madhwa. It is a humble effort to make available this Great work to sadhakas who are interested in the noble path of propagating Acharya Madhwa's Philosophy.

With great humility, we solicit the readers to bring to our notice any inadvertant typographical mistakes that could have crept in, despite great care. We would be pleased to incorporate such corrections in the next versions. Users can contact us, for editable version, to facilitate any value additions.

Contact: H K SRINIVASA RAO, NO 26, 2ND FLOOR, 15TH CROSS, NEAR VIDHYAPEETA CIRCLE, ASHOKANAGAR, BANGALORE 560050. PH NO. 26615951, 9901971176, 8095551774, Skype Id:

SRKARC6070

Email : Srkarc@gmail.com

ಕೃತಜ್ಞತೆಗಳು



ಜನ್ಮಾಂತರದ ಸುಕೃತದ ಫಲವಾಗಿ ಮಧ್ಯಮತದಲ್ಲಿ ಜನಿಸಲು,
ಪ್ರೇಮಮೂರ್ತಿಗಳಾಗಿ ನನ್ನ ಅಸ್ತಿತ್ವಕ್ಕೆ ಕಾರಣರಾದ, ಈ ಸಾಧನೆಗೆ
ಅವಕಾಶಮಾಡಿದ, ನನ್ನ ಪೂಜ್ಯ ಮಾತಾ ಪಿತೃಗಳಾದ,
ದಿವಂಗತರಾದ ಲಲಿತಮ್ಮ ಮತ್ತು ಕೃಷ್ಣರಾವ್ ಹೆಚ್ ಆರ್ ಅವರ ಸವಿ
ನೆನಪಿನಲ್ಲಿ ಈ "ಸರ್ವಮೂಲ ಯಜ್ಞ"

“ಮಾತೃದೇವೋ ಭವ ಪಿತೃದೇವೋ ಭವ ಆಚಾರ್ಯದೇವೋ ಭವ

ॐ जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात् ॐ ॥ 31-31 ॥.....	38
द्वितीयपादः ॥ 01-02 ॥.....	39
ॐ सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॐ ॥ 01-32 ॥.....	39
ॐ विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ॐ ॥ 02-33 ॥.....	39
ॐ अनुपपत्तेस्तुन शारीरः ॐ ॥ 03-34 ॥.....	39
ॐ कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ॐ ॥ 04-35 ॥.....	39
ॐ शब्दविशेषात् ॐ ॥ 05-36 ॥.....	39
ॐ स्मृतेश्च ॐ ॥ 06-37 ॥.....	40
ॐ अर्भकौकस्वात् तद्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ॐ ॥07-38 ॥.....	40
ॐ सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् ॐ ॥ 08-39 ॥.....	40
ॐ अत्ताचराचरग्रहणात् ॐ ॥ 09-40 ॥.....	40
ॐ प्रकरणाच्च ॐ ॥ 10-41 ॥.....	41
ॐ गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॐ ॥ 11-42 ॥.....	41
ॐ विशेषणाच्च ॐ ॥ 12-43 ॥.....	42
ॐ अन्तर उपपत्तेः ॐ ॥ 13-44 ॥.....	43
ॐ स्थानादिव्यपदेशाच्च ॐ ॥ 14-45 ॥.....	43
ॐ सुखविशिष्टाभिधानादेव च ॐ ॥ 15-46 ॥.....	43
ॐ श्रुतोपनिषत्कृत्यभिधानाच्च ॐ ॥ 16-47 ॥.....	43
ॐ अनवस्थितेरसम्भवाच्च नेतरः ॐ ॥ 17-48 ॥.....	44
ॐ अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॐ ॥ 18-49 ॥.....	44
ॐ न च स्मार्तमतद्धर्माभिलापात् ॐ ॥ 19-50 ॥.....	44
ॐ शारीरश्चोभयोऽपि हि भेदेनैवमधीयते ॐ ॥ 20-51 ॥.....	44
ॐ अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ॐ ॥ 21-52 ॥.....	45
ॐ विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां नेतरौ ॐ ॥ 22-53 ॥.....	45
ॐ रूपोपन्यासाच्च ॐ ॥ 23 ॥.....	46
ॐ वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात् ॐ ॥ 24-55 ॥.....	46
ॐ स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति ॐ ॥ 25-56 ॥.....	46
ॐ शब्दादिभ्योऽन्तः प्रतिष्ठानान्नेति चेन्न तथा दृष्ट्युपदेशादसम्भवात् पुरुषविधमपि चैनमधीयते ॐ ॥ 26-57 ॥.....	47
ॐ अत एव न देवता भूतं च ॐ ॥ 27-58 ॥.....	48
ॐ साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः ॐ ॥ 28-59 ॥.....	48
ॐ अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः ॐ ॥ 29-60 ॥.....	48
ॐ अनुस्मृतेर्बादरिः ॐ ॥ 30-61 ॥.....	48
ॐ सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति ॐ ॥ 31-62 ॥.....	48
ॐ आमनन्ति चैनमस्मिन् ॐ ॥ 32-63 ॥.....	48
तृतीयः पादः ॥ 01-03 ॥.....	49
ॐ द्युभवाद्यायतनं स्वशब्दात् ॐ ॥ 01-64 ॥.....	49

ॐ श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च ॐ ॥ 38-101 ॥	59
ॐ कम्पनात् ॐ ॥ 39-102 ॥	60
ॐ ज्योतिर्दर्शनात् ॐ ॥ 40-103 ॥	60
ॐ आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ॐ ॥ 41-104 ॥	61
ॐ सुषुप्त्युत्कान्त्योर्भेदेन ॐ ॥ 42-105 ॥	61
ॐ पत्यादिशब्देभ्यः ॐ ॥ 43-106 ॥	61
चतुर्थं पादः ॥ 01-04 ॥	62
ॐ आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च ॐ ॥ 01-107 ॥	62
ॐ सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् ॐ ॥ 02-108 ॥	62
ॐ तदर्धीनत्वादर्थवत् ॐ ॥ 03-109 ॥	63
ॐ ज्ञेयत्वावचनाच्च ॐ ॥ 04-110 ॥	63
ॐ वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि ॐ ॥ 05-111 ॥	63
ॐ प्रकरणात् ॐ ॥ 06-112 ॥	63
ॐ त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ॐ ॥ 07-113 ॥	63
ॐ महद्वच ॐ ॥ 08-114 ॥	63
ॐ चमसवदविशेषात् ॐ ॥ 09-115 ॥	64
ॐ ज्योतिरुपक्रमात् तु तथा ह्यधीयत एके ॐ ॥ 10-116 ॥	64
ॐ कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिबदविरोधः ॐ ॥ 11-117 ॥	64
ॐ न सद्ब्रह्मोपसद्ब्रह्मादपि नानाभावादतिरेकाच्च ॐ ॥ 12-118 ॥	64
ॐ प्राणादयो वाक्यशेषात् ॐ ॥ 13-119 ॥	64
ॐ ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने ॐ ॥ 14-120 ॥	64
ॐ कारणत्वेन चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः ॐ ॥ 15-121 ॥	65
ॐ समाकर्षात् ॐ ॥ 16-122 ॥	65
ॐ जगद्वाचित्वात् ॐ ॥ 17-123 ॥	65
ॐ जीवमुख्यप्राणलिङ्गादिति चेत् तद्व्याख्यातम् ॐ ॥ 18-124 ॥	65
ॐ अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके ॐ ॥ 19-125 ॥	65
ॐ वाक्यान्वयात् ॐ ॥ 20-126 ॥	66
ॐ प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्रमरथ्यः ॐ ॥ 21-127 ॥	66
ॐ उत्कमिष्यत् एवंभावादित्यौडुलोमिः ॐ ॥ 22-128 ॥	66
ॐ अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः ॐ ॥ 23-129 ॥	66
ॐ प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ॐ ॥ 24-130 ॥	66
ॐ अभिष्योपदेशाच्च ॐ ॥ 25-131 ॥	66
ॐ साक्षाच्चोभयान्नात् ॐ ॥ 26-132 ॥	67
ॐ आत्मकृतेः परिणामात् ॐ ॥ 27-133 ॥	67
ॐ योनिश्च हि गीयते ॐ ॥ 28-134 ॥	67
ॐ एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ॐ ॥ 29-135 ॥	68

ॐ वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति ॐ ॥ 35-170 ॥	78
ॐ न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॐ ॥ 36-171 ॥	78
ॐ उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॐ ॥ 37-172 ॥	79
ॐ सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॐ ॥ 38-173 ॥	79
द्वितीय पादः ॥ 02-02 ॥	79
ॐ रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ॐ ॥ 01-174 ॥	79
ॐ प्रवृत्तेश्च ॐ ॥ 02-175 ॥	80
ॐ पयोऽम्बुवच्चेत् तत्रापि ॐ ॥ 03-176 ॥	80
ॐ व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ॐ ॥ 04-177 ॥	80
ॐ अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॐ ॥ 05-178 ॥	80
ॐ अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ॐ ॥ 06-179 ॥	81
ॐ पुरुषाद्भवदिति चेत् तथाऽपि ॐ ॥ 07-180 ॥	81
ॐ अङ्गीत्वानुपपत्तेः ॐ ॥ 08-181 ॥	81
ॐ अन्यथाऽनुमितौ च ज्ञाशक्तिवियोगात् ॐ ॥ 09-182 ॥	81
ॐ विप्रतिषेधाच्चसमञ्जसम् ॐ ॥ 10-183 ॥	81
ॐ महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॐ ॥ 11-184 ॥	82
ॐ उभयथाऽपि न कर्मातस्तदभावः ॐ ॥ 12-185 ॥	82
ॐ समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादवस्थितेः ॐ ॥ 13-186 ॥	82
ॐ नित्यमेव च भावात् ॐ ॥ 14-187 ॥	82
ॐ रूपादिमत्त्वाच्चविपर्ययो दर्शनात् ॐ ॥ 15-188 ॥	82
ॐ उभयथा च दोषात् ॐ ॥ 19-189 ॥	82
ॐ अपरिग्रहाच्चान्यन्तमनपेक्षा ॐ ॥ 17-190 ॥	82
ॐ समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ॐ ॥ 18-191 ॥	83
ॐ इतरेतरप्रत्ययात्वादिति चेन्न उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ॐ ॥ 19-192 ॥	83
ॐ उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ॐ ॥ 20-193 ॥	83
ॐ असति प्रतिज्ञोपरोधो योगपद्यमन्यथा ॐ ॥ 21-194 ॥	83
ॐ प्रतिसङ्घाऽप्रतिसङ्घान्निरोधप्राप्तिरविच्छेदात् ॐ ॥ 22-195 ॥	83
ॐ उभयथा च दोषात् ॐ ॥ 23-196 ॥	83
ॐ आकाशो चाविशेषात् ॐ ॥ 24-197 ॥	83
ॐ अनुस्मृतेऽपि ॐ ॥ 25-198 ॥	84
ॐ नासतोऽदृष्टत्वात् ॐ ॥ 26-199 ॥	84
ॐ उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ॐ ॥ 27-200 ॥	84
ॐ नामाव उपलब्धेः ॐ ॥ 28-201 ॥	84
ॐ वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॐ ॥ 29-202 ॥	84
ॐ न भावोऽनुपलब्धेः ॐ ॥ 30-203 ॥	84
ॐ क्षणिकत्वाच्च ॐ ॥ 31-204 ॥	84

ॐ नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ॐ ॥ 22-240 ॥	95
ॐ स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ॐ ॥ 23-241 ॥	96
ॐ अविरोधश्चन्दनवत् ॐ ॥ 24-242 ॥	96
ॐ अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि ॐ ॥ 25-243 ॥	96
ॐ गुणाद्वाऽऽलोकवत् ॐ ॥ 26-244 ॥	96
ॐ व्यतिरेको गन्धवत् तथा च दर्शयति ॐ ॥ 27-245 ॥	97
ॐ पृथगुपदेशात् ॐ ॥ 28-246 ॥	97
ॐ तद्गुणसारत्वात् तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ॐ ॥ 29-247 ॥	97
ॐ यावदात्माभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॐ ॥ 30-248 ॥	98
ॐ पुंस्त्वादिवत्त्वस्यसतोऽभिव्यक्तियोगात् ॐ ॥ 31-249 ॥	98
ॐ नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा ॐ ॥ 32-250 ॥	98
ॐ कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ॐ ॥ 33-251 ॥	99
ॐ विहारोपदेशात् ॐ ॥ 34-252 ॥	99
ॐ उपादानात् ॐ ॥ 35-253 ॥	99
ॐ व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ॐ ॥ 36-254 ॥	99
ॐ उपलब्धिवदनियमः ॐ ॥ 37-255 ॥	99
ॐ शक्तिविपर्ययात् ॐ ॥ 38-256 ॥	100
ॐ समाध्यभावाच्च ॐ ॥ 39-257 ॥	100
ॐ यथा च तक्षोभयथा ॐ ॥ 40-258 ॥	100
ॐ परात् तु तच्छ्रुतेः ॐ ॥ 41-259 ॥	100
ॐ कृतप्रयत्नापेक्षस्तुविहितप्रतिषेधावैयर्थ्यादिभ्यः ॐ ॥ 42-260 ॥	100
ॐ अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ॐ ॥ 43-261 ॥	101
ॐ मन्त्रवर्णात् ॐ ॥ 44-262 ॥	101
ॐ अपि स्मर्यते ॐ ॥ 45-263 ॥	102
ॐ प्रकाशादिवन्नैवं परः ॐ ॥ 46-264 ॥	102
ॐ स्मरन्ति च ॐ ॥ 47-265 ॥	102
ॐ अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत् ॐ ॥ 48-266 ॥	102
ॐ असन्ततेश्चाव्यतिकरः ॐ ॥ 49-267 ॥	103
ॐ आभास एव च ॐ ॥ 50-268 ॥	103
ॐ अदृष्टनियमात् ॐ ॥ 51-269 ॥	104
ॐ अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम् ॐ ॥ 52-270 ॥	104
ॐ प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात् ॐ ॥ 53-271 ॥	104
चतुर्थः पादः ॥ 02-04 ॥	104
ॐ तथा प्राणाः ॐ ॥ 01-272 ॥	105
ॐ गौण्यसम्भवात् ॐ ॥ 02-273 ॥	105
ॐ प्रतिज्ञानुपरोधाच्च ॐ ॥ 03-274 ॥	105

ॐ स्मरन्ति च ॐ ॥ 15-309 ॥	118
ॐ अपि सप्त ॐ ॥ 16-310 ॥	118
ॐ तत्रापि च तद्यापारादविरोधः ॐ ॥ 17-311 ॥	118
ॐ विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ॐ ॥ 18-312 ॥	119
ॐ न तृतीये तथोपलब्धेः ॐ ॥ 19-313 ॥	119
ॐ स्मर्यतेऽपि च लोके ॐ ॥ 20-314 ॥	119
ॐ दर्शनाच्च ॐ ॥ 21-315 ॥	120
ॐ तृतीये शब्दावरोधः संशोकजस्य ॐ ॥ 22-316 ॥	120
ॐ स्मरणाच्च ॐ ॥ 23-317 ॥	120
ॐ तत्त्वाभाव्यापत्तिरूपपत्तेः ॐ ॥ 24-318 ॥	120
ॐ नातिचिरेण विशेषात् ॐ ॥ 25-319 ॥	121
ॐ अन्याधिष्ठिते पूर्ववदभिलापात् ॐ ॥ 26-320 ॥	121
ॐ अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् ॐ ॥ 27-321 ॥	121
ॐ रेतःसिग्गयोगोऽथ ॐ ॥ 28-322 ॥	122
ॐ योनेः शरीरम् ॐ ॥ 29-323 ॥	122
द्वितीयः पादः ॥ 03-02 ॥	122
ॐ सन्ध्ये सृष्टिराह हि ॐ ॥ 01-324 ॥	122
ॐ निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च ॐ ॥ 02-325 ॥	123
ॐ मायामात्रं तु कात्स्न्येनानभिव्यक्त स्वरूपत्वात् ॐ ॥ 03-326 ॥	123
ॐ सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ॐ ॥ 04-327 ॥	123
ॐ पराभिध्यानात् तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययो ॐ ॥ 05-328 ॥	124
ॐ देहयोगाद्वासोऽपि ॐ ॥ 06-329 ॥	124
ॐ तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि ह ॐ ॥ 07-330 ॥	124
ॐ अतः प्रभोधोऽस्मात् ॐ ॥ 08-331 ॥	124
ॐ स एव च कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः ॐ ॥ 09-332 ॥	124
ॐ मुग्धेऽर्धसम्मत्तिः परिशेषात् ॐ ॥ 10-333 ॥	125
ॐ न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ॐ ॥ 11-334 ॥	125
ॐ न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ॐ ॥ 12-335 ॥	125
ॐ अपि चैवमेके ॐ ॥ 13-336 ॥	126
ॐ अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् ॐ ॥ 14-337 ॥	126
ॐ प्रकाशवच्चावैयर्थ्यम् ॐ ॥ 15-338 ॥	126
ॐ आह च तन्मात्रम् ॐ ॥ 16-339 ॥	127
ॐ दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते ॐ ॥ 17-340 ॥	127
ॐ अत एव चोपमा सूर्यकादिवत् ॐ ॥ 18-341 ॥	127
ॐ अम्बुवदग्रहणात् तु न तथात्वम् ॐ ॥ 19-342 ॥	128
ॐ वृद्धिहासभात्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवम् ॐ ॥ 20-343 ॥	128

ॐ इतरे त्वर्थसामान्यात् ॐ ॥ 14-379 ॥	137
ॐ आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ॐ ॥ 15-380 ॥	137
ॐ आत्मशब्दाच्च ॐ ॥ 16-381 ॥	138
ॐ आत्मगृहीतिरितवदुत्तरात् ॐ ॥ 17-382 ॥	138
ॐ अन्वयादिति चेत् स्यादवधारणात् ॐ ॥ 18-383 ॥	138
ॐ कार्याख्यानादपूर्वम् ॐ ॥ 19-384 ॥	138
ॐ समान एवं चाभेदात् ॐ ॥ 20-385 ॥	138
ॐ सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ॐ ॥ 21-386 ॥	139
ॐ न वा विशेषात् ॐ ॥ 22-387 ॥	139
ॐ दर्शयति च ॐ ॥ 23-388 ॥	139
ॐ सम्भृतिच्युव्याप्तपि चातः ॐ ॥ 24-389 ॥	139
ॐ पुरुषविद्यायामपि चेतरेषामनाम्नानात् ॐ ॥ 25-390 ॥	139
ॐ वेधाद्यर्थभेदात् ॐ ॥ 26-391 ॥	140
ॐ हानौ त्पायनशब्दशेषत्वात् कुशाच्छन्दस्त्युपगानवत् तदुक्तम् ॐ ॥ 27-392 ॥	140
ॐ साम्परायेतर्तव्याभावात् तथा ह्यन्ये ॐ ॥ 28-393 ॥	140
ॐ छन्दत उभयाविरोधात् ॐ ॥ 29-394 ॥	140
ॐ गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा ह विरोधः ॐ ॥ 30-395 ॥	141
ॐ उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ॐ ॥ 31-396 ॥	141
ॐ अनियमः सर्वेषामविरोधाच्छब्दानुमानाभ्याम् ॐ ॥ 32-397 ॥	141
ॐ यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् ॐ ॥ 33-398 ॥	141
ॐ अक्षरधियां त्वविरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत् तदुक्तम् ॐ ॥ 34-99 ॥	142
ॐ इयदात्मननात् ॐ ॥ 35-400 ॥	142
ॐ अन्तरा भूतग्रामवदिति चेत् तदुक्तम् ॐ ॥ 36-401 ॥	142
ॐ अन्यथा भेदानुपपत्तिरिति चेन्नोपदेशवत् ॐ ॥ 37-402 ॥	142
ॐ व्यतिहारो विशिषन्ति हीतरवत् ॐ ॥ 38-403 ॥	142
ॐ सैव हि सत्यादयः ॐ ॥ 29-404 ॥	143
ॐ कामादितरत्र तत्र चायतनादिभ्यः ॐ ॥ 40-405 ॥	143
ॐ आदरादलोपः ॐ ॥ 41-406 ॥	143
ॐ उपस्थितेस्तद्वचनात् ॐ ॥ 42-407 ॥	144
ॐ तन्निर्धारणार्थनियमस्तद्वद्वेः पृथग्यप्रतिबन्धः फलम् ॐ ॥ 43-408 ॥	144
ॐ प्रदानवदेव हि तदुक्तम् ॐ ॥ 44-409 ॥	144
ॐ लिङ्गभूयस्त्वात् तद्धि बलीयस्तदपि ॐ ॥ 45-410 ॥	144
ॐ पूर्वविकल्पः प्रकरणात् स्यात् क्रियामानसवत् ॐ ॥ 46-411 ॥	145
ॐ अतिदेशाच्च ॐ ॥ 47-412 ॥	145
ॐ विद्यैव तु निर्धारणात् ॐ ॥ 48-413 ॥	145
ॐ दर्शनाच्च ॐ ॥ 49-414 ॥	146

ॐ ऊर्ध्वरेतस्तु च शब्दे हि ॐ ॥ 17-450 ॥	154
ॐ परामर्शं जैमिनिरचोदना चापवदति हि ॐ ॥ 18-451 ॥	155
ॐ अनुष्ठेयं वादरायणः साम्यश्रुतेः ॐ ॥ 19-452 ॥	155
ॐ विधिर्वा धारणवत् ॐ ॥ 20-453 ॥	155
ॐ स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात् ॐ ॥ 21-454 ॥	155
ॐ भावशब्दाच्च ॐ ॥ 22-455 ॥	156
ॐ पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात् ॐ ॥ 23-456 ॥	156
ॐ तथा चैकवाक्योपबन्धात् ॐ ॥ 24-457 ॥	156
ॐ अत एव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ॐ ॥ 25-458 ॥	156
ॐ सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत् ॐ ॥ 26-459 ॥	156
ॐ शमदमाद्युपेतः स्यात् तथाऽपितु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात् ॐ ॥ 27-460 ॥	157
ॐ सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तदर्शनात् ॐ ॥ 28-461 ॥	157
ॐ अवाधाच्च ॐ ॥ 29-462 ॥	157
ॐ अपि स्मर्यते ॐ ॥ 30-463 ॥	157
ॐ शब्दश्चातोऽकामचारे ॐ ॥ 31-464 ॥	158
ॐ विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि ॐ ॥ 32-465 ॥	158
ॐ सहकारित्वेन च ॐ ॥ 33-466 ॥	158
ॐ सर्वथाऽपितु त एवोभयलिङ्गात् ॐ ॥ 34-467 ॥	158
ॐ अनभिभवं च दर्शयति ॐ ॥ 35-468 ॥	159
ॐ अन्तरा चापि तु तदृष्टेः ॐ ॥ 36-469 ॥	159
ॐ अपि स्मर्यते ॐ ॥ 37-470 ॥	159
ॐ विशेषानुग्रहं च ॐ ॥ 38-471 ॥	159
ॐ अतस्त्वितरज्यायोलिङ्गाच्च ॐ ॥ 39-472 ॥	160
ॐ तद्भूतस्य तु तद्भावो जैमिनेरपि नियमातद्रूपाभावेभ्यः ॐ ॥ 40-473 ॥	160
ॐ न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात् तदयोगात् ॐ ॥ 41-474 ॥	160
ॐ उपपूर्वमपीत्येके भावशमनवत् तदुक्तम् ॐ ॥ 42-475 ॥	161
ॐ बहिस्तूभयथाऽपि स्मृतेराचाराच्च ॐ ॥ 43-476 ॥	161
ॐ स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ॐ ॥ 44-477 ॥	161
ॐ आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रियते ॐ ॥ 45-478 ॥	162
ॐ सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वत्तो विध्यादिवत् ॐ ॥ 49-479 ॥	162
ॐ कृत्स्नभावात् तु गृहिणोपसंहारः ॐ ॥ 47-480 ॥	162
ॐ मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ॐ ॥ 48-481 ॥	162
ॐ अनाविष्कुर्वन्नन्यथात् ॐ ॥ 49-482 ॥	163
ॐ ऐहिकमप्रस्तुतप्रतिबन्धे तदर्शनात् ॐ ॥ 50-483 ॥	163
ॐ एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्तदवस्थावधृतेः ॐ ॥ 51-484 ॥	164
चतुर्थाध्यायः (फलाध्यायः) ॥ 03-04 ॥	164

ॐ अविभागो वचनात् ॐ ॥ 16-519 ॥	174
ॐ तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात् तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ॐ ॥ 17-520 ॥	174
ॐ रश्म्यनुसारी ॐ ॥ 18-521 ॥	175
ॐ निशि नेति चेन्न सम्बन्धात् ॐ ॥ 19-522 ॥	175
ॐ यावद्देहभावित्वादर्शयति च ॐ ॥ 20-523 ॥	175
ॐ अतश्चायनेऽपि हि दक्षिणे ॐ ॥ 21-524 ॥	175
ॐ योगिनः प्रति स्मर्येते स्मार्ते चैते ॐ ॥ 22-525 ॥	176
तृतीयः पादः ॥ 04-03 ॥	176
ॐ अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ॐ ॥ 01-526 ॥	176
ॐ वायुशब्दादविशेषविशेषाभ्याम् ॐ ॥ 02-527 ॥	177
ॐ तटितोऽधिवरुणः सम्बन्धात् ॐ ॥ 03-528 ॥	177
ॐ आतिवाहिकस्तल्लिङ्गात् ॐ ॥ 04-529 ॥	177
ॐ उभयव्यामोहत् तत्सिद्धेः ॐ ॥ 05-530 ॥	177
ॐ वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ॐ ॥ 06-531 ॥	178
ॐ कार्यं बादरिस्स्यगत्युपपत्तेः ॐ ॥ 07-532 ॥	178
ॐ विशेषितत्वाच्च ॐ ॥ 08-533 ॥	178
ॐ सामीप्यात्तुतद्व्यपदेशः ॐ ॥ 09-534 ॥	178
ॐ कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ॐ ॥ 10-535 ॥	178
ॐ स्मृतेश्च ॐ ॥ 11-536 ॥	179
ॐ परं जैमिनिर्मुर्व्यत्वात् ॐ ॥ 12-537 ॥	179
ॐ दर्शनाच्च ॐ ॥ 13-538 ॥	179
ॐ न च कार्ये प्रतिपत्त्यभिसन्धिः ॐ ॥ 14-539 ॥	179
ॐ अप्रतीकालम्बनान् नयतीति बादरायण उभयथा च दोषात् तत्कृतुश्च ॐ ॥ 15-540 ॥	179
ॐ विशेषं च दर्शयति ॐ ॥ 16-541 ॥	180
चतुर्थः पादः ॥ 04-04 ॥	180
ॐ सम्पद्याविहाय स्वेन शब्दात् ॐ ॥ 01-542 ॥	180
ॐ मुक्तः प्रतिज्ञानात् ॐ ॥ 02-543 ॥	181
ॐ आत्मा प्रकरणात् ॐ ॥ 03-544 ॥	181
ॐ अविभागेन दृष्टत्वात् ॐ ॥ 04-545 ॥	181
ॐ ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॐ ॥ 05-546 ॥	181
ॐ चितिमात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॐ ॥ 06-547 ॥	182
ॐ एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॐ ॥ 07-548 ॥	182
ॐ सङ्कल्पादेव च तच्छ्रुतेः ॐ ॥ 08-549 ॥	182
ॐ अत एव चानन्याधिपतिः ॐ ॥ 09-550 ॥	183
ॐ अभावं बादरिराह ह्येवम् ॐ ॥ 10-551 ॥	183
ॐ भावं जैमिनिर्विकल्पान्नात् ॐ ॥ 11-552 ॥	183

ब्रह्मसूत्रभाष्यम् (ब्रह्मसूत्रसमेतम्)

प्रथमाध्यायः (समन्वयाध्यायः) ॥ 01-01 ॥

प्रथमः पादः ॥ 01-01 ॥

नारायणं गुणैः सर्वैरुदीर्णं दोषवर्जितम् ।

ज्ञेयं गम्यं गुरुश्चापि नत्वा सूत्रार्थ उच्यते ॥

द्वापरे सर्वत्र ज्ञान आकुलीभूते तन्निर्णयाय ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिभिरर्थितो भगवान् नारायणो व्यासत्वेनावततार । अथेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारेच्छूनां तद्योगमविजानतां तज्ज्ञापनार्थं वेदमुत्सन्नं व्यञ्जयंश्चतुर्धा व्यभजत् । चतुर्विंशतिधैकशतधा सहस्रधा द्वादशधा च । तदर्थनिर्णयाय ब्रह्मसूत्राणि चकार ।

तच्चोक्तं स्कान्दे –

नारायणाद्विनिष्पन्नं ज्ञानं कृतयुगे स्थितम् ।

किञ्चित् तदन्यथा जातं त्रेतायां द्वापरेऽखिलम् ॥

गौतमस्य ऋषेः शापाज्ज्ञाने त्वज्ञानतां गते ।

सङ्कीर्णबुद्धयो देवा ब्रह्मरुद्रपुरस्सराः ॥

शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम् ।

तैर्विज्ञापितकार्यस्तु भगवान् पुरुषोत्तमः ॥

अवतीर्णो महायोगी सत्यवत्यां पराशरात् ।

उत्सन्नान् भगवान् वेदानुज्जहार हरिः स्वयम् ॥

चतुर्धा व्यभजत् तांश्च चतुर्विंशतिधा पुनः ।

शतधा चैकधा चैव तथैव च सहस्रधा ॥

कृष्णो द्वादशधा चैव पुनस्तस्यार्थवित्तये ।

चकार ब्रह्मसूत्राणि येषां सूत्रत्वमञ्जसा ॥

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।

अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

निर्विशेषितसूत्रत्वं ब्रह्मसूत्रस्य चाप्यतः ।

यथा व्यासत्वमेकस्य कृष्णस्यान्ये विशेषणात् ॥

सविशेषणसूत्राणि ह्यपराणि विदो विदुः ।

मुख्यस्य निर्विशेषेण शब्दोऽन्येषां विशेषतः ॥

इति वेदविदः प्राहुः शब्दतत्त्वार्थवेदिनः ।

सूत्रेषु येषु सर्वेऽपि निर्णयाः समुदीरिताः ॥

शब्दजातस्य सर्वस्य यत्प्रमाणश्च निर्णयः ।

एवं विधानि सूत्राणि कृत्वा व्यासो महायशाः ॥

ब्रह्मरुद्रादिदेवेषु मनुष्यपितृपक्षिषु ।

ज्ञानं संस्थाप्य भगवान् क्रीडते पुरुषोत्तमः । 'इत्यादि ।

ॐ ॐ अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॐ ॥ 01-01 ॥

‘अथ’ शब्दो मङ्गलार्थोऽधिकारानन्तर्यार्थश्च ।

‘अतः’ शब्दो हेत्वर्थः ।

उक्तं च गारुडे –

अथातः शब्दपूर्वाणि सूत्राणि निखिलान्यपि ।

प्रारभन्ते नियत्यैव तत् किमत्र नियामकम् ॥

कश्चार्थश्च तयोर्विद्वन् कथमुत्तमता तयोः ।

एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् यथा ज्ञास्यामि तत्त्वतः ॥

एवमुक्तो नारदेन ब्रह्मा प्रोवाच सत्तमः ।

आनन्तर्येऽधिकारस्य मङ्गलार्थे तथैव च ॥

अतशब्दस्त्वतः शब्दो हेत्वर्थे समुदीरितः ।

परस्य ब्रह्मणो विष्णोः प्रसादादिति वा भवेत् ॥

स हि सर्वमनोवृत्तिप्रेरकः समुदाहृतः ।

सिसृक्षोः परमाद्विष्णोः प्रथमं द्वौ विनिःसृतौ ॥

ओङ्कारश्चाथशब्दश्च तस्मात् प्राथमिकौ क्रमात् ।

तद्धेतुत्वं वदंश्चापि तृतीयोऽत उदाहृतः ॥

अकारः सर्ववागात्मा परब्रह्माभिधायकः ।

तथौ प्राणात्मकौ प्रोक्तौ व्याप्तिस्थितिविधायकौ ॥

अतश्च पूर्वमुच्चार्याः सर्व एते सतां मताः ।

अथातःशब्दयोरेवं वीर्यमाज्ञाय तत्त्वतः ॥

सूत्रेषु तु महाप्राज्ञास्तावेवादौ प्रयुञ्जते' इति ॥

अधिकारश्चोक्तो भागवततन्त्रे –

मन्दमध्योत्तमत्वेन त्रिविधा ह्यधिकारिणः ।

तत्र मन्दा मनुष्येषु य उत्तमगणा मताः ॥

मध्यमा ऋषिगन्धर्वा देवास्तत्रोत्तमा मताः ।

इति जातिकृतो भेदस्तथाऽन्यो गुणपूर्वकः ॥

भक्तिमान् परमे विष्णौ यस्त्वध्ययनवान् नरः ।

अधमः शमादिसंयुक्तो मध्यमः समुदाहृतः ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तमसारं चाप्यनित्यकम् ।

विज्ञाय जातवैराग्यो विष्णुपादैकसंश्रयः ॥

स उत्तमोऽधिकारी स्यात् सन्न्यस्ताखिलकर्मवान् इति ।

'अध्ययनमात्रवतः' , 'नाविशेषात्' इति चोपरि ।

'शान्तो दान्त उपरतस्तिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवाऽत्मानं पश्येत्'

"परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् । नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् । "

" यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥" इत्यादि श्रुतिभ्यश्च ॥

व्योमसंहितायां च –

अन्त्यजा अपि ये भक्ता नामज्ञानाधिकारिणः ।

स्त्रीशूद्रब्रह्मबन्धूनां तन्त्रज्ञानेऽधिकारिता ॥

एकदेशे परोक्ते तु न तु ग्रन्थपुरस्सरे ।

त्रैवर्णिकानां वेदोक्ते सम्यग्भक्तिमतां हरौ ॥

आहुरप्युत्तमस्त्रीणामधिकारं तु वैदिके ।

यथोर्वशी यमी चैव शच्याद्याश्च तथाऽपरा ॥ इति ॥

यतो नारायणप्रसादमृते न मोक्षः, न च ज्ञानं

विनाऽत्यर्थप्रसादः, अतो ब्रह्मजिज्ञासाकर्तव्या ।

यत्रानवसरोऽन्यत्र पदं तत्र प्रतिष्ठितम् ।

वाक्यं वेति सतां नीतिः सावकाशे न तद्भवेत् ॥ इति ब्रह्मसंहितायाम् ।

‘तमेवं विद्वानमृत इह भवति । नान्यः पन्था अयनाय विद्यते’ ॥

‘प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः’ ।

‘यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः’ ।

‘आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निधिध्यासितव्यः’ – इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यः ।

‘कर्मणात्वधमः प्रोक्तः प्रसादः श्रवणादिभिः ।

मध्यमो ज्ञानसम्पत्त्या प्रसादस्तूत्तमो मतः ॥

प्रसादात्त्वधमाद्विष्णोः स्वर्गलोकः प्रकीर्तितः ।

मध्यमाज्जनलोकादिरुत्तमस्त्वेव मुक्तिधः ॥

श्रवणं मननं चैव ध्यानं भक्तिस्तथैव च ।

साधनं ज्ञानसम्पत्तौ प्रधानं नान्यदिष्यते ॥

न चैतानि विना कश्चिज्ज्ञानमाप कुतश्चन' । इति नारदीये ।

'ब्रह्म' शब्दश्च विष्णवावेव –

'यमन्तः समुद्रे कवयोऽवयन्ति तदक्षरे परमे प्रजाः ।

यतः प्रसूता जगतः प्रसूती तोयेन जीवान्वयससर्ज भूम्याम्' – इत्युक्त्वा'

'तदेवर्तं तद् सत्यमाहुस्तदेव ब्रह्म परमं कवीनाम्' इति हि श्रुतिः ॥

'तन्नो विष्णुः' इति वचनाद्विष्णुरेव हि तत्रोच्यते ॥

न चेतश्शब्दात् तत्प्राप्तिः –

'नामानि विश्वाऽभि न सन्ति लोके यदाविरासीदनृतस्य सर्वम् ।

नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति तं वै विष्णुं परममुदाहरन्ति' – इति भाल्लवेयश्रुतिः ॥

'यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या' इत्येवशब्दान्नान्येषां सर्वनामता ।

'अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः'

-इति विष्णोर्हि लिङ्गम् ।

न च प्रसिद्धार्थं विनाऽन्योऽर्थो युज्यते ॥

'अजस्य नाभाविति यस्य नाभेरभूच्छ्रुतेः पुष्करं लोकसारम् ॥

तस्मै नमो व्यस्तसमस्तविश्वविभूतये विष्णवे लोककर्त्रे'

इति स्कान्दे ।

'परो दिवा पर एना पृथिव्या' इति समाख्याश्रुतौ ॥

'यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्' इत्युक्त्वा 'मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे'

इत्याह ।

उग्रो रुद्रः । समुद्रेऽन्तर्नारायणः । प्रसिद्धत्वात् सूचितत्वाच्चास्यार्थस्य । न चाविरोधे प्रसिद्धः

परित्यज्यते । उक्तान्यायेन च श्रुतय एतमेव वदन्ति ।

'वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।

आदावन्ते च मध्ये च विष्णुः सर्वत्र गीयते'
इति हरिवंशेषु ॥

न चेतर्ग्रन्थविरोधः .

'एषं मोहं सृजाम्याशु यो जनान् मोहयिष्यति ।
त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय ॥
अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्व महाभुज ।
प्रकाशं कुरु चात्मानामप्रकाशं च मां कुरु' इति वाराह वचनात् ॥

शैव च स्कान्दे –

'श्वपचादपि कष्टत्वं ब्रह्मेशानादयः सुराः ।
तदैवाच्युत यान्त्येव यदैव त्वं पराङ्मुखः' इति ॥

ब्राह्मे च ब्रह्मवैवर्ते –

'नाहं न च शिवोऽन्ये च तच्छक्त्येकांशभागिनः ।
बालः क्रीडनकैर्यद्वत् क्रीडतेऽस्माभिरच्युतः' इति ॥
न च वैष्णवेषु तथा । तच्च'एष मोहम्' इत्युक्तम् ॥

॥ इति जिज्ञासाधिकरणम् ॥

ॐ जन्माद्यस्य यतः ॐ ॥ 02-02 ॥

सृष्टिस्थितिसंहारनियमनज्ञानाज्ञानबन्धमोक्षा यतः ।

'उत्पत्तिस्थितिसंहारा नियतिर्ज्ञानमावृतिः ।
बन्धमोक्षौ च पुरुषाद्यस्मात् स हरिरेकराट्' इति स्कान्दे ।
'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति ।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्म' इति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ।
चतुर्भिस्साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तिं व्यतीरं वीविपत् ।
'परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्रुवन्ति ।

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप'। 'यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा' इत्यादि च ॥ 02 ॥
॥ इति जन्माधिकरणम् ॥
अनुमानतोऽन्ये न कल्पनीयाः –
ॐ शास्त्रयोनित्वात् ॐ ॥ 03-03 ॥
'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तं सर्वानुभूमात्मानं साम्पराये' ॥ 'औपनिषदः पुरुषः' इत्यादिश्रुतिभ्यः ॥ न चानुमामस्य नियतप्रामाण्यम् ॥ 'श्रुतिसाहाय्यरहितमनुमानं न कुत्रचित् । निश्चयात् साधयेदर्थं प्रमाणान्तरमेव च ॥ श्रुतिस्मृतिसहायं यत् प्रमाणान्तरमुत्तमम् । प्रमाणपदवीं गच्छेन्नात्र कार्याविचारणा ॥ पूर्वोत्तराविरोधेन कोऽत्रार्थोऽभिमतो भवेत् । इत्याद्यमूहनं तर्कः शुष्कतर्कं तु वर्जयेत्' इत्यादि कौर्मे ॥ शक्यत्वाच्चानुमानानां सर्वत्र । 'सर्वत्र शक्यते कर्तुमागमं हि विनाऽनुमा । तस्मान्न सा शक्तिमती विनागममुदीक्षितुम् ।' इति वाराहे । 'रेतो धातुर्वटकणिका घृतधूमाधिवासनम् । जातिस्मृतिरयस्कान्तः सूर्यकान्तोऽम्बुभक्षणम् ॥ प्रेत्य भूताप्ययश्चैव देवताभ्युपयाचनम् । मृते कर्मनिवृत्तिश्च प्रमाणमिति निश्चयः ॥' -इति मोक्षधर्मवचनान्न नास्तिक्यवादो युज्यते । दर्शनाच्च तप आधिफलस्य ॥ 'ऋग्यजुःसामाथर्वाश्च भारतं पञ्चरात्रकम् ।

मूलरामायणं चैव शास्त्रमित्यभिदीयते ॥

यच्चानुकूलमेतस्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्तितम् ।

अतोऽन्यो ग्रन्थविस्तारो नैव शास्त्रं कुवत्सु तत् ॥ इति स्कान्दे ॥

‘साङ्ख्यं योगः पाशुपतं वेदारण्यकमेव च’ ।

इत्यारभ्य, वेदपञ्चरात्रयोरैक्याभिप्रायेण पञ्चरात्रस्यैव प्रामाण्यमुक्तम्, इतरेषां भिन्नमतत्वं प्रदर्श्य
मोक्षधर्मेष्वपि । शास्त्रं योनिः प्रमाणमस्येति शास्त्रयोनि ॥ 03 ॥

॥ इति शास्त्रयोनित्वाधिकरणम् ॥ 03 ॥

अज्ञानां प्रतीयमानमपि नेतरेषां शास्त्रयोनित्वम्, कुतः ? ।

ॐ तत्तु समन्वयात् ॐ ॥ 04-04 ॥

अन्वय उपपत्त्यादि लिङ्गम् ।

उक्तं च बृहत्संहितायाम् –

‘उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्

अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये’ इति ॥

‘उपक्रमादितात्पर्यलिङ्गैः सम्यङ् निरूप्यमाणे तदेव शास्त्रगम्यम् ।

‘मां विधत्तेऽभिदत्ते मां विकल्प्योऽपोह्य इत्यहम् ।

इत्यस्या हृदयं साक्षान्नान्यो मद्देद कश्चन’ इति भागवते ॥ 04 ॥

॥ इति समन्वयाधिकरणम् ॥ 04 ॥

ननु‘यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह’ ॥

‘अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्’ ॥

‘अवचनेनैव प्रोवाच’ ॥

‘यद्वाचाऽनभ्युदितम् । येन वागभ्युद्यते ॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्’

इत्यादिभिर्न तच्छब्दगोचरम् । नेत्याह -

ॐ ईक्षतेर्नाशब्दम् ॐ ॥ 05-05 ॥

‘स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते’ ॥
‘आत्मन्येवात्मनं पश्येत् – विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत’
इत्यादिवचनैरीक्षणीयत्वाद्वाच्यमेव । औपनिषदत्वान्नावचनेनेक्षणम् ॥
‘सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति’ ॥
‘वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्’ इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यश्च ॥
अवाच्यत्वादिकं त्वप्रसिद्धत्वात् ॥
‘न तदीदृगिति ज्ञेयं न वाच्यं न च तर्क्यते ।
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति मेरो रूपं विपश्चितः’ इतिवत् ॥
अप्रसिद्धेरवाच्यं तद्वाच्यं सर्वागमोक्तिः ।
अतर्क्यं तर्क्यमज्ञेयं ज्ञेयमेवं परं स्मृतम्’ इति गारुडे ॥
न चाशब्दत्वमितरसिद्धम् ॥05॥

ॐ गौणश्चेन्नात्मशब्दात् ॐ ॥ 06-06 ॥

न च गौण आत्मा दृश्यो वाच्यश्च न निर्गुण इति युक्तम् । आत्मशब्दात् ॥
‘यो गुणैः सर्वतोहीनो यश्च दोषविवर्जितः ।
हेयोपादेयरहितः स आत्मेत्यभिधीयते ॥
एतदन्यस्वभावो यः सोऽनात्मेति सतां मतम् ॥
अनात्मन्यात्मशब्दस्तु सोपचारः प्रयुज्यते’ इति वामने ॥
‘द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे आत्मा चैवानात्मा च ।
तत्र यः स आत्मा स नित्यः शुद्धः केवलो निर्गुणश्च ।
अथ ह योऽनीदृशः सोऽनात्मा’ इति तलवकारब्राह्मणम् ।
न च मुख्ये सत्यमुख्यं युज्यते ॥ 06 ॥

ॐ तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ॐ ॥ 07-07 ॥

न हि गौणात्मनिष्ठस्य मोक्षः ।
‘यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्माऽस्मिन् सन्दोहे गहने प्रविष्टः ।

स विश्वकृत् स हि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः स उ लोक एव'

इत्यात्मनिष्ठस्य मोक्ष उपदिश्यते ।

'अयमात्मा ब्रह्म' ॥

'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते' ।

'दत्तं दूर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसम्भवान्' ॥

'चेतनस्तु द्विधा प्रोक्तो जीव आत्मेति च प्रभो ।

जीवा ब्रह्मादयः प्रोक्ता आत्मैकस्तु जनार्दनः ॥

इतरेष्वात्मशब्दस्तु सोपचारोऽभिधीयते ॥

तस्यात्मनो निर्गुणस्य ज्ञानान्मोक्ष उदाहृतः ॥

सगुणास्त्वपरे प्रोक्तास्तज्ज्ञानान्नैव मुच्यते ।

परो हि पुरुषो विष्णुस्तस्मान्मोक्षस्ततः स्मृतः' इति पाद्मे ॥ 07 ॥

ॐ हेयत्वावचनाच्च ॐ ॥ 08-08 ॥

'तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ । अमृतस्यैष सेतुः'

इत्यन्येषां हेयत्ववचनादस्याहेयत्ववचनान्न गौण आत्मा ॥ 08 ॥

ॐ स्वाप्ययात् ॐ ॥ 09-09 ॥

'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' ॥

'स आत्मन आत्मानमुद्धृत्यात्मन्येव विलापयत्यथात्मैव भवति' ।

स देवो बहुधा भूत्वा निर्गुणः पुरुषोत्तमः ॥

एकीभूय पुनः शेते निर्दोषो हरिरादिकृत्'

इति स्वस्यै व स्वस्मिन्नप्ययवचनात् ।

न हि गौणात्मनि निर्दोषस्य लयः ॥ 09 ॥

न च कासुचिच्छाखास्वन्यथोच्यते ।

ॐ गतिसामान्यात् ॐ ॥ 10-10 ॥

‘सर्वे वेदा युक्तयः सुप्रमाणा ब्राह्मं ज्ञानं परमं त्वेकमेव । प्रकाशयन्ते न विरोधः कुतश्चिद्वेदेषु सर्वेषु
तथेतिहासे’
इति पैङ्गिश्रुतेर्गतेर्ज्ञानस्य साम्यमेव ॥ 10 ॥

ॐ श्रुतत्वाच्च ॐ ॥ 11-11 ॥

‘एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूतादिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च’ इति ॥
न ह्यशब्दः श्रूयते । न चाप्रसिद्धं कल्प्यम् । सर्वशब्दावाच्यस्य लक्षणाऽयुक्तेः ॥ 11 ॥

॥ इति ईक्षत्यधिकरणम् ॥

‘तमेव समन्वयं प्रकटयत्यानन्दमयोऽभ्यासादित्यादिना समस्तेनाध्यायेन प्रायेण ।
प्रायेणान्यत्र प्रसिद्धानां शब्दानां परमात्मनि समन्वयः प्रदर्श्यतेऽस्मिन् पादे । नान्यथा तददृष्टेः ।
ब्रह्मजिज्ञासा कर्तव्येत्युक्तम् । तच्च ब्रह्म ‘ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा’ इत्यानन्दमयावयवरूपं प्रतीयते । न
ह्यवयविनं विना अवयवमात्रस्य ज्ञेयतेत्यत आह –

ॐ आनन्दमयोऽभ्यासात् ॐ ॥ 12-12 ॥

आनन्दमयो ब्रह्मादिः प्रकृतिर्विष्णुर्वा । ब्रह्मशब्दाद्विरण्यगर्भस्य प्राप्तिः शतानन्दनाम्ना च ।
अष्टमूर्तित्वात्सूर्ये प्रोक्तत्वाच्च रुद्रस्य । एनमन्येषामपि ‘मम योनिर्महद्ब्रह्म’ इति ब्रह्मशब्दाद्बहुभावाच्च
प्रकृतेः ।
‘बृह जातिजीवकमलासनशब्दराशिषु’ इति ब्रह्मशब्दादेव सर्वजीवानाम् । अन्नमयत्वादेश्च ।
तथाऽपि न त आनन्दमयशब्देनोच्यन्ते । किन्तु विष्णुरेव । ‘तदेव ब्रह्म परमं कवीनाम्’ ‘एतमेव
ब्रह्मेत्याचक्षते’ ।

‘ब्रह्मशब्दः परे विष्णौ नान्यत्र क्वचिदिष्यते ।
असम्पूर्णाः परे यस्मादुपचारेण वा भवेत्’ ॥
‘ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते’ ।
‘वासुदेवात्मकं ब्रह्म मूलमन्त्रेण वा यतिः’ ॥

इत्यादिषु तस्मिन्नेव प्रसिद्धब्रह्मशब्दाभ्यासात् ॥ 12 ॥

ॐ विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् ॐ ॥ 13-13 ॥

विकारात्मकत्वात्तदभिमानित्वाच्च युज्यते प्रकृत्यादीनां मयट् शब्दः न तु परमात्मन इति मा भूत् ।
प्रचुरानन्दत्वाद्यानन्दमयः । न तु तद्विकारत्वात् । अन्नादीनां च प्राचुर्यमेव ॥ 'अद्यतेऽत्ति च' इति
व्याखानात् तत्प्राचुर्यं च युज्यते ॥
उपजीव्यत्वमेवाद्यत्वम् ॥ 'स वा एषः' इत्यन्यप्रारम्भात् ॥ 'योऽन्नं ब्रह्मोपासते'
इत्यादिब्रह्मशब्दाद्बहु रूपत्वाच्च न विकारित्वमविरोधश्च । न च पृथक्कल्पना युक्ता । स्वरूपे च युज्यते
प्रचुरप्रकाशो रविरितिवत् ॥ 13 ॥

ॐ तद्धेतुव्यपदेशाच्च ॐ ॥ 14-14 ॥

'को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्' इति ॥ 14 ॥

ॐ मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते ॐ ॥ 15-15 ॥

'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इति सूचयित्वा 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इति मन्त्रवर्णलक्षितं परमेव
ब्रह्मशब्दानुसन्धानाद्गीयते । न चावयवत्वविरोधः ॥
'स शिरः स दक्षिणः पक्षः स उत्तरः पक्षः स आत्मा स पुच्छम्'
इति तस्यै वावयवत्वोक्तेश्चतुर्वेदशिखायाम्
शिरो नारायणः पक्षो दक्षिणः सव्य एव च ।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सन्दोहो वासुदेवकः ॥
नारायणोऽथ सन्दोहो वासुदेवः शिरोऽपि वा ।
पुच्छं सङ्कर्षणः प्रोक्त एक एव तु पञ्चधा ॥
अङ्गाङ्गित्वेन भगवान् क्रीडते पुरुषोत्तमः ॥
ऐश्वर्यान्न विरोधश्च चिन्त्यस्तस्मिन् जनार्दने ।
अतर्क्ये हि कुतस्तर्कस्त्वप्रमेये कुतः प्रमा' –इति बृहत्संहितायाम् ॥
रसशब्देन विशेषणात् तत्सारभूतं चिन्मात्रमेवोच्यते । इदमिति च दृश्यमानसन्निहितत्वात् ।
'अनन्योऽप्यन्यशब्देन तथैको बहुरूपवान् ।
प्रोच्यते भगवान् विष्णुरैश्वर्यात् पुरुषोत्तमः' ॥ इति ब्रह्माण्डे ।

न चोक्तप्राप्त्या विरिञ्चादिरुच्यते ॥ 15 ॥

ॐ नेतरोऽनुपपत्तेः ॐ ॥ 16-16 ॥

न ह्यन्यज्ञानान्मोक्ष उपपद्यते ।

‘तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते’ इति द्युक्तम् ॥ 16 ॥

ॐ भेदव्यपदेशाच्च ॐ ॥ 17-17 ॥

‘ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः’ ॥

‘अदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते’ ।

‘अथ सोऽभयं गतो भवति’ ।

‘स यश्चायं पुरुषे’ इत्यादिभेदव्यपदेशात् ।

न च ‘तत्त्वमसि’ ‘अहं ब्रह्मास्मि’ इत्यादिश्रुतिविरोधः ॥

‘नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति’ इति तत्तच्छब्दवाच्यत्वोक्तेः ॥

‘इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवः’ ॥

‘असर्वः सर्व इत्यपि’, ‘विद्याऽऽत्मनि भिदाभोधः’

‘भेददृष्ट्वाऽभिमानेन निस्सङ्गेनापि कर्मणा’ ।

‘जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ।

‘असर्वः सर्व इवात्मैव सन्ननात्मेव प्रत्यङ् पराङ् वैक ईयते

बहुधेयते’ ‘स पुरुषः’ ‘स ईश्वरः स ब्रह्म’ ।

‘सर्वान्तर्यामको विष्णुः सर्वनाम्नाऽभिधीयते ।

एषोऽहं त्वमसौ चेति न तु सर्वस्वरूपतः’ ॥

‘नैतदिच्छन्ति पुरुषमेकं कुरुकुलोद्बह’ इत्यादेश्च ।

उक्ता च प्राप्तिः । ‘ब्रह्मैव सन्’ इत्यपि जीव एव ब्रह्मशब्दः ।

उपपद्यते च विरोधे । प्रमादात्मकत्वाद्बन्धस्य विमुक्तत्वं च युज्यते ।

‘मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः’ इति हि भागवते ॥ 17 ॥

न च तत्तदनुमानविरोधः ।

ॐ कामाच्च नानुमानापेक्षा ॐ ॥ 18-18 ॥

यथाकामं ह्यनुमातुं शक्यते । अतो न तत्त्वे पृथगनुमानमपेक्ष्यते । उक्तं च स्कान्दे –

‘यथाकामाऽनुमा यस्मात् तस्मात् साऽनपगा श्रुतेः ।

पूर्वापराविरोधाय चेष्ट्यते नान्यथा क्वचित्’ इति ॥

‘नैषा तर्केण मतिरापनेया’ इति च ॥ 18 ॥

ॐ अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॐ ॥ 19-19 ॥

अस्य जीवस्य । युक्तिसमुच्चये चशब्दः ।

‘सोऽश्रुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता’ ।

‘अनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते’ ।

‘एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्गामति’ इत्यादि ॥ 19 ॥

॥ इति आनन्दमयाधिकरणम् ॥ 06 ॥

‘अदृश्येऽनात्म्ये’ इत्युक्तम् । तच्चादृष्यत्वम्,

‘अन्तः प्रविष्टं कर्तारमेतमन्तश्चन्द्रमसि मनसा चरन्ततम् ।

सहैव सन्तं न विजानन्ति देवाः’

इत्यन्तःस्थस्य कस्यचिदुच्यते ।

स च ‘इन्द्रो राजा’ ‘सप्तयुञ्जन्ति’ इत्यादिभिरन्यः प्रतीयते ।

तस्मात् स एवानन्दमय इति न मन्तव्यम् ।

ॐ अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॐ ॥ 20-20 ॥

अन्तः श्रूयमाणो विष्णुरेव ।

‘अन्तः स्समुद्रे मनसा चरन्तम् । ब्रह्मान्वनिन्दद्दशहोतारमर्णे’ ।

‘समुद्रेऽन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः’

यस्याण्डकोशं शुष्ममाहुः’ इत्यादि तद्धर्मोपदेशात् ।

स हि क्षीरसमुद्रशायी । तस्य च वीर्यमण्डकोशः ।

‘सोऽबिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।

अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
यस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः' इति व्यासस्मृतेः ।
'अहं तत्तेजो रश्मीन्नारायणम् पुरुषं जातमग्रतः ।
'पुरुषात् प्रकृतिर्जगदण्डम्' इति चतुर्वेदशिखायाम् ॥ 20 ॥

ॐ भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॐ ॥ 21-21 ॥

'इन्द्रस्यात्मानिहितः पञ्च होता' 'वायोरात्मानं कवयो निचिक्युः'
'अन्तरादित्ये मनसा चरन्तम्, देवानां हृदयं ब्रह्मान्वविन्दत्' इत्यादिभेदव्यपदेशात् ॥ 21 ॥

॥ इति अन्तःस्तत्त्वाधिकरणम् ॥ 07 ॥

'को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् इति' इत्याकाशस्यानन्दमयत्वे हेतुरुक्तः,
न तु विष्णोरिति न मन्तव्यम् । यतः -

ॐ आकाशस्तल्लिङ्गात् ॐ ॥ 22-22 ॥

'अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच'
इत्यत्र भूताकाशस्य प्राप्तिः । न चासौ युज्यते, किन्तु विष्णुरेव ।
'स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषोऽनन्तः' इत्यादि तल्लिङ्गात् । -
'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रोवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि, परो मात्रया तन्वा वृधान' इत्यादिना
तस्यैव हि तल्लिङ्गम् ।
'अनन्तो भगवान् ब्रह्म आनन्देत्यादिभिः पदैः ।
प्रोच्यते विष्णुरेवैकः परेषामुपचारतः' इति ब्राह्मे ।
'नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति' इति चोक्तम् ॥ 22 ॥

॥ इति आकाशाधिकरणम् ॥

ॐ अत एव प्राणः ॐ ॥ 23-23 ॥

‘तद्वैत्वं प्राणो अभवः महान् भोगः प्रजापतेः ।

भुजः करिष्यमाणः यद्देवान् प्राणयो न वा ॥

इति महाभोगशब्देन परमानन्दत्वं प्राणस्योक्तम् । स च प्राणः प्रसिद्धेर्वायुरित्यापतति । न चैवं यतो

विष्णुरेव प्राणः । अत एव ‘श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ अहोरात्रे पार्श्वे’ इत्यादि तल्लिङ्गादेव ॥ 23 ॥

॥ इति प्राणाधिकरणम् ॥ 9 ॥

‘यो वेद निहितम् गुहायाम्’ इत्युक्तम् । तच्च गुहानिहितम् –

‘वि मे कर्णा पतयतो विचक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।

विमे मनश्चरति दूर आधीः किंस्विद्वक्ष्यामि किमु नो मनिष्ये’

इति ज्योतिरुक्तम् ।

तच्च ज्योतिरग्निसूक्तत्वात् प्रसिद्धेश्चाग्निरेवेति प्राप्तम् । अत आह –

ॐ ज्योतिश्चरणाभिधानात् ॐ ॥ 24-24 ॥

विष्णुरेव ज्योतिः । कर्णादीनां विचरणाभिधानात् । स हि ‘परो मात्रया तन्वावृधान’ इत्यादिना

कर्णादिविदूरः ॥ 24 ॥

॥ इति ज्योतिरधिकरणम् ॥ 10 ॥

ॐ छन्दोऽभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोऽर्पणनिगदात् तथा हि दर्शनम् ॐ

॥ 25-25 ॥

‘अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते’ इत्युक्तस्य ज्योतिषो ‘गायत्री वा इदं सर्वम्’ इति गायत्र्या

समारम्भः कृतः । तस्मान्न विष्णुरिति चेन्न ।

तथा चेतोऽर्पणार्थं हि निगद्यते अग्नि गायत्र्यादिशब्दार्थरूपोऽसाविति चेतोऽर्पणार्थं हि निगद्यते ।

तथा हि दर्शनं ‘गायति त्रायति च’ इत्यादि ।

‘सर्वच्छन्दोऽभिधो ह्येषः सर्वदेवाभिधो ह्यसौ ।

सर्वलोकाभिधो ह्येषः तेषां तदुपचारतः’ इति वामने ॥ 25 ॥

ॐ भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् ॐ ॥ 26-26 ॥



‘तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पुरुषः ।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि’ इति ।

‘सुवर्णं कोशं रजसा परीवृतम् देवानां वसुधानीं विराजम् । अमृतस्य पूर्णां तामु कलां विचक्षते पादं
षड्भोतुर्न किलाविवित्स’ इति श्रुतेः । पाद इति एकदेशपरिमितं चतुर्भागबल इतिवद्भिन्नं च शब्दात् ।
स हि पुरुषसूक्ताभिधेयः ‘यज्ञेन यज्ञमयजन्त’ इति यज्ञशब्दात् ।

‘यज्ञो विष्णुर्देवता’ इति हि श्रुतिः ।
तस्मिन् काले महाराज राम एवाभिधीयते ।
यथा हि पौरुषे सूक्ते विष्णुरेवाभिधीयते’ । इति च स्कान्दे ॥ 26 ॥

ॐ उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात् ॐ ॥ 27-27 ॥

त्रिपादस्यामृतं दिवि इति पूर्वोपदेशः ।
‘परो दिवः’ इति पञ्चम्यन्तः पश्चिमः ।
तस्मान्नैकं वस्त्वत्रोच्यत इति चेन्न ।
त्रिसप्तलोकापेक्षयोभयस्मिन्नप्यविरोधात् ॥ 27 ॥

॥ इति गायत्र्यधिकरणम् ॥ 11 ॥

‘प्राणो विष्णुरित्युक्तम् । तत्र
‘ता वा एताः शीर्षन् श्रियः श्रिताश्चक्षुश्चोत्रं मनो वाक्प्राणः ।
इत्यत्र प्राणस्य विष्णुत्वं न विद्यते । इन्द्रियैः सहाभिधानादिति । अत आह-

ॐ प्राणस्तथाऽनुगमात् ॐ ॥ 28-28 ॥

‘तं देवाः प्राणयन्त’ ‘स एषोऽसुः स एष प्राणः’
‘प्राण ऋच इत्येव विद्यात्’ , ‘तदयं प्राणोऽधिष्ठति’
इत्याद्यनुगमात्, अत्रापि प्राणो विष्णुरेव ।
‘विष्णुमेवानयन् देवा विष्णुं भूतिमुपासते ।
स एव सर्ववेदोक्तस्तद्रथो देह उच्यते’ इति स्कान्दे । ब्रह्मशब्दानुगमाच्च ॥ 28 ॥

ॐ न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्धभूमा ह्यस्मिन् ॐ ॥ 29-29 ॥



‘प्राणो वा अहमस्मृषे’ इति वक्तरात्मोपदेशादिन्द्र एवेति चेन्न, ‘प्राणस्त्वं प्राणः सर्वाणि भूतानि’
इति बह्वध्यात्मसम्बन्धो ह्यत्र विद्यते ॥ 29 ॥

ॐ शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववत् ॐ ॥ 30-30 ॥

शास्त्रमन्तर्यामि । ‘संविच्छास्त्रं परं पदम्’ इति हि भागवते ।

‘तत्तन्नाम्नोच्यते विष्णुः सर्वशास्त्रत्वहेतुतः ।

न कापि किञ्चिन्नामास्ति तमृते पुरुषोत्तमम्’ इति पाद्मे ।

‘अहं मनुरभवं सूर्यश्च’ इत्यादिवत् ॥ 30 ॥

ॐ जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात् ॐ

॥ 31-31 ॥

तावन्ति शतसंवत्सरस्याहां सहस्राणि भवन्ति’ इति जीवलिङ्गम् ।

प्राणसंवादादि मुख्यप्राणलिङ्गम् । तस्मान्नेति चेन्न । अन्तर्बहिः

सर्वगतत्वेनेत्युपासात्रैविध्यादिहाश्रितत्वाच्च ।

‘स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत’

‘स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत्’

‘एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः’ इत्यादिना ।

‘महिदासाभिधो जज्ञे इतरायास्तपोबलात् ।

साक्षात् स भगवान् विष्णुर्यस्तन्त्रं वैष्णवं व्यधात्’ इति ब्रह्माण्डे ।

तत्तदुपासनायोग्यतया च पुरुषाणाम् ।

‘केषांचित् सर्वगतत्वेन केषांचिद्दृढये हरिः ।

केषांचिद्बहिरेवासावुपास्यः पुरुषोत्तमः’ इति ब्राह्मे ॥

‘अग्नौ क्रियावतां विष्णुर्योगिनां हृदये हरिः ।

प्रतिमास्वप्रबुद्धानां सर्वत्र विदितत्मानाम्’ इति च ॥ 31 ॥

॥ इति पादान्त्यप्राणाधिकरणम् ॥ 12 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्य विरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्र भाष्ये प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः

॥01-01 ॥

द्वितीयपादः ॥ 01-02 ॥

लिङ्गात्मकानां शब्दानां विष्णौ प्रवृत्तिं दर्शयत्यस्मिन् पादे प्राधान्येन । 'ब्रह्म ततमम्' इति सर्वगतत्वमुक्तं विष्णोः ।

तच्च 'तस्यैतस्यासावादित्यो रसः' इत्यादिनाऽऽदित्यस्य प्रतीयत इत्यतोऽब्रवीत् ।

ॐ सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॐ ॥ 01-32 ॥

'स यश्चायमशरीरः प्रज्ञात्मा' इत्यादिना सर्वत्रोच्यमानो नारायण एव ।

'तदेव ब्रह्म परमं कवीनाम्' । 'परमं यो महद्ब्रह्म' ।

'वासुदेवात् परः को नु ब्रह्मशब्दोदितो भवेत् ।

स हि सर्वगुणैः पूर्णस्तदन्ये तूपचारतः' ॥

इति तस्मिन्नेव प्रसिद्धब्रह्मशब्दोपदेशात् ॥ 01 ॥

ॐ विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ॐ ॥ 02-33 ॥

'स योऽतोऽश्रुतः' इत्यादि ।

स हि 'न ते विष्णो जायमानः' इत्यादिनाऽश्रुतत्वादिगुणकः ।

'स सविता स वायुः स इन्द्रः, सोऽश्रुतः सोऽदृष्टो यो हरिर्यः परमो यो विष्णुर्योऽनन्तः' इत्यादि चतुर्वेदशिखायाम् ॥ 02 ॥

न चादित्शब्दाच्चक्षुर्मयत्वादेश्च जीव इति वाच्यम् ।

ॐ अनुपपत्तेस्तुन शारीरः ॐ ॥ 03-34 ॥

एकस्य सर्वशरीरस्थत्वानुपपत्तेरेव ॥ 03 ॥

ॐ कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ॐ ॥ 04-35 ॥

'आत्मानां परस्मैशंसति' इत्यादि ॥ 04 ॥

ॐ शब्दविशेषात् ॐ ॥ 05-36 ॥

‘एतमेव ब्रह्मेत्याचक्षते’ इति । न हि जीवमेव ब्रह्मेत्याचक्षते ।

‘एष उ एव ब्रह्मैष उ एवात्मैष उ एव सवितैष उ एवेन्द्र एष उ एव हरिर्हरति परः परानन्दः’ इति
चंद्रद्युम्नशाखायाम् ॥ 05 ॥

ॐ स्मृतेश्च ॐ ॥ 06-37 ॥

‘अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः’

‘गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा’ इत्यादि ।

न चा प्रामाणिकं कल्यम् ॥ 06 ॥

ॐ अर्भकौकस्त्वात् तद्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ॐ

॥ 07-38 ॥

सर्वेषु भूतेष्वित्यल्पौकस्त्वाच्चक्षुर्मयत्वादिना जीवव्यपदेशाच्च नेति चेन्न । अर्भकौकस्त्वेन
चक्षुर्मयत्वादिरूपेण च तस्यैव विष्णोर्निचाय्यत्वात् । सर्वगतत्वेऽप्यल्पौकस्त्वं च युज्यते व्योमवत् ।

‘सर्वेन्द्रियमयो विष्णुः सर्वप्राणिषु च स्थितः ।

सर्वनामाभिधेयश्च सर्ववेदोदितश्च सः’ इति स्कान्दे ॥ 07 ॥

ॐ सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् ॐ ॥ 08-39 ॥

जीवपरयोरेकशरीरस्थत्वे समानभोगप्राप्तिरिति चेन्न । सामर्थ्यं वैशेष्यात् । उक्तं च गारुडे –

‘सर्वज्ञाल्पज्ञताभेदात् सर्वशक्त्यल्पशक्तितः ।

स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां सम्भोगो नेशजीवयोः’ इति च ॥ 08 ॥

॥ इति सर्वगतत्वाधिकरणम् ॥ 01 ॥

‘जन्माद्यस्य यतः’ इत्युक्तम् । तत्रात्तत्त्वं,

‘स यद्यदेवासृजत तत्तदत्तुमधियत । सर्वा वा अत्तीति तददितेरदितित्वम्’ इत्यदितेः प्रतीयते ।

‘स यद्यदेवासृजत’ इति पुल्लिङ्गम् च ‘कूटस्थोऽक्षर उच्यते’ इत्यादिवत् । अत्रोच्यते -

ॐ अत्ताचराचरग्रहणात् ॐ ॥ 09-40 ॥

न हि चराचरस्य सर्वस्यात्तत्त्वमदितेः ।

निविष्टो हृदयेनित्यं रसं पिबति कर्मजम् ॥ इति बृहत्संहितायाम् ।

‘शुभं पिबत्यसौ नित्यं नाशुभं स हरिः पिबेत् ।

पूर्णानन्दमयस्यास्य चेष्टा न ज्ञायते क्वचित् ॥ इति पाद्मे ॥

‘यो वेद निहितं गुहायाम्’

इत्यादिना प्रसिद्धं हिशब्देन दर्शयति ॥ 11 ॥

ॐ विशेषणाच्च ॐ ॥ 12-43 ॥

‘यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म तत्परम्’ इति ।

‘पृथग् वक्तुं गुणास्तस्य न शक्यन्तेऽमितत्वतः ।

यतोऽतो ब्रह्मशब्देन सर्वेषां ग्रहणं भवेत् ॥

एतस्माद्ब्रह्मशब्दोऽयं विष्णोरेव विशेषणम् ।

अमिता हि गुणा यस्मान्नान्येषां तमृते विभुम् ॥ इति पाद्मे ।

न च जीवे समन्वयोऽभिधीयते ।

‘सत्य आत्मा सत्यो जीवः सत्यं भिदा सत्यं भिदा सत्यं भिदा मैवारुवण्यो मैवारुवण्यो

मैवारुवण्यः’ इति भाल्लवेयश्रुतिः ।

‘आत्मा हि परमः स्वतन्त्रोऽधिगुणो जीवोऽल्पशक्तिरस्वातन्त्रोऽवरः’

इति च भाल्लवेयश्रुतिः ।

‘यथेश्वरस्य जीवस्य भेदः सत्यो विनिश्चयात् ।

एवमेव हि मे वाचं सत्यां कर्तुमिहार्हसि ॥

‘यथेश्वरश्च जीवश्च सत्यभेदौ परस्परम् ।

तेन सत्येन मां देवास्त्रायन्तु सहकेशवाः ॥’

इत्यदेर्नासत्यो भेदः ॥ 12 ॥

॥ इति गुहाधिकरणम् ॥ 03 ॥

आदित्ये विष्णुरित्युक्तम् ।

‘य एष आदित्ये पुरुषः सोऽहमस्मि स एवाहमस्मि’

इत्यादावग्नीनामेवादित्यस्थत्वमुच्यते । अतोऽक्ष्यादित्ययोरैक्याद्



‘य एषोऽन्तरिक्षिणि पुरुषो दृश्यत’ इत्यत्राप्यग्निरेवोच्यते । अतः

‘तद्यथा पुष्करफलाश आपो न श्लिष्यन्त

एवमेवंविधि पापं कर्म न श्लिष्यते’

इत्यग्निज्ञानादेव सर्वपापश्लेषान्मोक्षोपपत्तिरिति । अतो ब्रवीति –

ॐ अन्तर उपपत्तेः ॐ ॥ 13-44 ॥

चक्षुरन्तस्थो विष्णुरेव । ‘त्रिपादस्यामृतं दिवि’ इत्यादिना तस्यैवामृतत्वाद्युपपत्तेः । ब्रह्मशब्दाद्युपपत्तेश्च ।

‘सोऽहमस्मि’ इत्यादि त्वन्तर्याम्यपेक्षया ।

‘अन्तर्यामिणमीशेशमपेक्ष्याहं त्वमित्यपि ।

सर्वे शब्दाः प्रयुज्यन्ते सति भेदेऽपि वस्तुषु’ इति महाकौर्मे ॥ 13 ॥

ॐ स्थानादिव्यपदेशाच्च ॐ ॥ 14-45 ॥

‘तद्यदस्मिन् सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति’

इत्यादिस्थानशक्तिः वामनिर्भामनिरित्याद्यात्मशक्तिश्चोच्यते । तस्य ह्येत्यल्लिङ्गम् । ‘स ईशः

सोऽसपत्नः स हरिः स परः स परोवरीयान् यदिदं चक्षुषि सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति

स वामनः स भामनः स आनन्दः सोऽच्युतः’ इति चतुर्वेदशिखायाम् ।

‘यत्स्थानत्वादिदं चक्षुरसङ्गं सर्ववस्तुभिः ।

स वामनः परोऽस्माकं गतिरित्येव चिन्तयेत्’ इति वामने ॥ 14 ॥

ॐ सुखविशिष्टाभिधानादेव च ॐ ॥ 15-46 ॥

‘प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्म’ इति, ‘विज्ञानमानन्दं ब्रह्म’

‘आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्’

इत्यादेस्तस्यैव हि लक्षणम्

‘लक्षणं परमानन्दो विष्णोरेव न संशयः ।

अव्यक्तादितृणान्तास्तु विष्णुडानन्दभागिनः’ इति ब्रह्मवैवर्ते ॥

न च मुख्ये सत्यमुख्यं युज्यते ॥ 15 ॥

ॐ श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च ॐ ॥ 16-47 ॥



‘स एनान् ब्रह्म गमयति’ इति । न ह्यन्यविद्यया अन्यगतिर्युक्ता ॥16॥

ॐ अनवस्थितेरसम्भवाच्च नेतरः ॐ ॥ 17-48 ॥

जीवस्य जीवान्तरनियामकत्वेऽनवस्थितेः, साम्यादसम्भवाच्च न जीवः । नियमप्रमाणाभावात् ।
अनीश्वरापेक्षत्वाच्च ॥ 17 ॥

॥ इत्यन्तराधिकरणम् ॥

‘यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष
त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः’ इत्याद्यन्तर्याम्युच्यते ।

तत्र च ‘एतदमृतम्’ इत्युक्तममृतत्वमुच्यते । स च ‘यस्य पृथिवी शरीरम्’ इत्यादिना सर्वात्मकत्वात्
प्रकृतिस्तत्तज्जीवो वा युक्तः ।

न हि विष्णोः पृथिव्यादिशरीरत्वमङ्गीक्रियत इत्यत आह –

ॐ अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॐ ॥ 18-49 ॥

‘यं पृथिवी न वेद’ ‘यः पृथिव्या अन्तर-’, इत्यादिना अधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशाद्विष्णुरेवान्तर्यामी ।

स हि ‘न ते विष्णो चायमानो न जातः’ ।

‘स योऽतोऽश्रुतोऽगतोऽमतोऽनतोऽदृष्टोऽविज्ञातोऽनादिष्टः सर्वेषां भूतामन्तरपुरुष’
इत्यादिनाऽविदितोऽन्तरश्च ॥ 18 ॥

ॐ न च स्मार्तमतद्धर्माभिलापात् ॐ ॥ 19-50 ॥

त्रिगुणत्वादिप्रधानधर्मानुक्तेर्न स्मृत्युक्तं प्रधानमन्तर्यामि ॥19॥

ॐ शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॐ ॥ 20-51 ॥

‘य आत्मानि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा

शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः’

‘यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो

यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानं शरीरं’

इत्युभयेऽपि हि शाखिनो भेदेनैनं जीवमधीयते ।

‘शीर्यते नित्यमेवास्माद्विष्णोस्तु जगदीदृशम् ।

रमते च परो ह्यस्मिन् शरीरं तस्य तज्जगत् ॥
इति वचनान्न शरीरत्वविरोधः ॥ 20 ॥
॥ इत्यन्तर्याम्यधिकरणम् ॥ 05 ॥
अदृश्यत्वादिगुणा विष्णोरुक्ताः । तत्र – 'यत्तद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तद् पाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः'इत्युक्त्वा, 'यथोर्णानाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्' इत्युक्त्वा तस्माच्च 'अक्षरात्परतः परः' इति परः प्रतीयत इत्यतोऽब्रवीत्-
ॐ अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ॐ ॥ 21-52 ॥
पृथिव्यादि दृष्टान्तमुक्त्वा'अक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्' इत्यतः परं तत्परतः पराभिधानात्,'कूटस्थोऽक्षर उच्यते' इति स्मृतेश्च प्रकृतेः प्राप्तिः । ब्रह्मशब्दात् तत्परतः पराभिधानादेव च हिरण्यगर्भस्य । 'तमेवं विद्वानमृत इह भवति' । 'तत्कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया' 'अथ द्वे वाव विद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा च' । तत्र यो वेदा यान्यङ्गानि यान्युपाङ्गानि यानि प्रत्यङ्गानि साऽपरा । अथ परा यया स हरिर्वेदितव्यो योऽसावदृश्यो निर्गुणः परः परमात्मा'इत्यादिना तद्धर्मत्वेनावगतपरविद्या- विषयत्वोक्तेर्विष्णुरेवादृश्यत्वादि गुणकः ॥ 21 ॥
ॐ विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां नेतरौ ॐ ॥ 22-53 ॥
'यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप' इति विशेषणान्न प्रकृतिः ।' तस्मात्तेतत्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते' इति भेदव्यपदेशान्न विरिञ्चः । 'अपरं त्वक्षरं या सा प्रकृतिर्जडरूपिका । श्रीः परा प्रकृतिः प्रोक्ता चेतना विष्णुसंश्रया ॥

तामक्षरं परं प्राहुः परतः परमक्षरम् ।

हरिमैवाखिलगुणमक्षरत्रयमीरितम् ॥

इति स्कान्दे त्र्यक्षराभिधानात् अक्षरात् परतः परः' इत्यपि विशेषणमेव ।

'जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः'

इति भेदव्यपदेशादीशपदप्राप्तोऽपि न रुद्रः ॥ 22 ॥

ॐ रूपोपन्यासाच्च ॐ ॥ 23 ॥

'यदा पश्यः पश्यते रुग्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्' इति

"एको नारायण आसीन्न ब्रह्मा न च शङ्करः । स मुनिर्भूत्वासमचिन्तयत् । तत एते व्यजायन्त विश्वो

हिरण्यगर्भोऽग्निर्यमो वरुणरुद्रेन्द्राः" इति ।

तस्य हैतस्य परमस्य नारायणस्य चत्वारि रूपाणि शुक्लं रक्तं रौक्मं कृष्णमिति । स

एतान्येतेभ्योऽभ्यचीकृपत् । विमिश्राणि व्यमिश्रयत् । अत एतादृगेतद्रूपमिति तस्यैव हि

रूपाण्यभिधीयन्ते ॥ 32 ॥

॥ इति अदृश्यत्वाधिकरणम् ॥

अदृश्यत्वादिगुणेषु सर्वगतत्वं

'यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते' इति वैश्वानरस्योक्तमित्यत आह -

ॐ वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात् ॐ ॥ 24-55 ॥

अग्नाविष्णवोः साधारणस्य वैश्वानरशब्दस्य विष्णावेव प्रसिद्धात्म शब्देन विशेषणाद्वैश्वानरो विष्णुरेव

॥ 24 ॥

ॐ स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति ॐ ॥ 25-56 ॥

'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः'

इति स्मर्यमाणमत्रापि स एवोच्यत इत्यस्यानुमापकम् । समाख्यानात् । इति शब्दः

समाख्याप्रदर्शकः ॥ 25 ॥

ॐ शब्दादिभ्योऽन्तः प्रतिष्ठानान्नेति चेन्न तथा दृष्ट्युपदेशादसम्भवात्

पुरुषविधमपि चैनमधीयते ॐ ॥ 26-57 ॥

‘अयमग्निर्वैश्वानरः’ ‘वैश्वानरमृत आज्ञातमग्निम्’ इत्यादिशब्दः ।

‘वैश्वानरे तद्दुतं भवति’ ‘हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः’

इत्याद्यग्निलिङ्गमादिशब्दोक्तम् ।

‘येनेदमन्नं पच्यते’ ‘तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयम्’

इत्यादिना पाचकत्वेनान्तः प्रतिष्ठानं च प्रतीयते । तस्मान्न विष्णुरिति चेन्न ।

‘अथ हेममात्मानमणोरणीयांसं परतः परं विश्वं हरिमुपासीतेति । सर्वनामा सर्वकर्मा सर्वलिङ्गः सर्वगुणः सर्वकामः सर्व धर्मः सर्वरूप इति’ ।

‘स य एतमेवमात्मानं विश्वं हरिमारादरमुपास्ते तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेषु देवेषु सर्वेषु वेदेषु कामचारो भवति’

इति तत्तन्नामलिङ्गादिना तस्यैव दृष्ट्युपदेशान्महोपनिषदि ॥

अनात्तत्त्वादनात्मान ऊनत्वाद्गुणराशितः ।

अब्रह्माणः परे सर्वे ब्रह्मात्म विष्णुरेव हि’ ॥

इत्यादिना ‘को न आत्मा किं ब्रह्म’ इत्यारम्भाच्च अन्येषामसम्भवाद्विष्णुरेव वैश्वानरः ।

‘चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत’ – इत्यादिना यः पुरुषाख्यो विष्णुरभहितस्तद्विधमेवात्र

‘मूर्दैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मा’

इत्यादिनैनं वैश्वानरमधीयते । चशब्देन सकलवेदतन्त्रपुराणादिषु विष्णुपरत्वं पुरुषसूक्तस्य दर्शयति

। तथा च ब्राह्मे –

‘यथैव पौरुषं सूक्तं नित्यं विष्णुपरायणम् ।

तथैव मे मनो नित्यं भूयाद्विष्णुपरायणम्’ इति ॥

चतुर्वेदशिखायां च –

‘सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्’ इति । ‘एष ह्येवाचिन्त्यः परः परमो

हरिरादिरनादिरनन्तोऽनन्तशीर्षोऽनन्ताक्षोऽनन्तबाहुरनन्त गुणोऽनन्तरूपः’ इति । बृहत्संहितायां च

–

‘यथा हि पौरुषं सूक्तं विष्णोरेवाभिधायकम् ।
न तथा सर्ववेदाश्च वेदाङ्गानि च नारद’ इत्यादि ॥
‘यस्माद्यजायते चाङ्गाल्लोकवेदादिकं हरे ।
तन्नामवाच्यमङ्गं तद्यथा ब्रह्मादिकं मुखम्’

॥ इति नारदीयवचनान्नाभेदोक्तिविरोधः ॥ 26 ॥

ॐ अत एव न देवता भूतं च ॐ ॥ 27-58 ॥

अग्निवैश्वानरादिशब्दस्तेजसि भूते अग्निदेवतायां च प्रसिद्धोऽप्यतः पूर्वोक्तहेतुत एवात्र न सा
तच्चाभिधीयते ॥ 27 ॥

ॐ साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः ॐ ॥ 28-59 ॥

नाश्यादयः शब्दा अश्यादिवाचकास्तथापि साक्षादेवानन्ययोगेन ब्रह्मवाचकैश्चैः
व्यवहारार्थमनभिज्ञानाच्चान्यत्र व्यवहारन्तीत्यभ्युपगमेऽविरोधं जैमिनिर्वक्ति ।

‘व्यासचित्स्थिताकाशादवच्छिन्नानि कानिचित् ।
अन्ये व्यवहरन्त्येतान्यूरीकृत्य गृहादिवत्’ ॥

इति स्कान्दवचनान्न मतानां परस्परविरोधः ॥ 28 ॥

ॐ अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः ॐ ॥ 29-60 ॥

तत्र तत्र प्रसिद्धावप्यश्यादिषु ब्रह्मणोऽभिव्यक्तेरश्यादिसूक्तनियम इत्याश्मरथ्यः ॥ 29 ॥

ॐ अनुस्मृतेर्बादरिः ॐ ॥ 30-61 ॥

तत्र तत्रोक्तस्य विष्णोरश्यादिष्वनुस्मर्यमाणत्वात् तन्नियमः – इति बादरिः ॥ 30 ॥

ॐ सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति ॐ ॥ 31-62 ॥

साक्षादप्यविरोधं वदन् जैमिनिः सूक्तादिनियममश्यादि सम्प्राप्त्या मन्यते।

‘तं यथा यथोपासते तदेव भवति’ इति दर्शयति ॥ 31 ॥

न ह्यन्योपासकोऽन्यं प्राप्तु इति युज्यत इत्यत आह –

ॐ आमनन्ति चैनमस्मिन् ॐ ॥ 32-63 ॥

एनं विष्णुमस्मिन्नग्न्यादावामनन्ति ।

‘योऽग्नौ तिष्ठन्’ ‘य एष एतस्मिन्नग्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषः’ इत्यादिना ॥ 32 ॥

॥ इति वैश्वानराधिकरणम् ॥ 07 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

01-02 ॥

तृतीयः पादः ॥ 01-03 ॥

तत्र चान्यत्र च प्रसिद्धानां शब्दानां विष्णौ समन्वयं प्रायेणास्मिन् पादे दर्शयति ।

विष्णोः परविद्याविषयत्वमुक्तम् । तत्र

‘यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्चसर्वैस्तमेवैकं जानथ आत्मानम्’ इत्यत्र,

‘प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रोऽमाऽऽविशान्तकः’

‘प्राणेश्वरः कृत्तिवासाः पिनाकी’

इत्यादिना रुद्रस्य प्राणाधारत्वप्रतीतेः ।

‘स एषोऽन्तरश्वरते बहुधा जायमानः’

इति जीवलिङ्गाच्च तयोः प्राप्तिरित्यत उच्यते –

ॐ द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ॐ ॥ 01-64 ॥

‘तमेवैकं जानथ आत्मानम्’ इत्यात्मशब्दात् द्युभ्वाद्याश्रयो विष्णुरेव ।

‘आत्मब्रह्मादयः शब्दास्तमृते विष्णुमव्ययम् ।

न सम्भवन्ति यस्मात् तैर्नैवाप्तागुणपूर्णता’ इति ब्रह्मवैवर्ते ॥ 1 ॥

ॐ मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् ॐ ॥ 02-65 ॥

‘अमृतस्यैष सेतुः’ इति ‘ब्रह्मविदाप्नोति परम्’, ‘नारायणं महाज्ञेयं विश्वात्मानं परायणम्’, ‘मुक्तानां परमा गतिः’ ‘एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्कामति’ इत्यादिना तस्यैव मुक्तप्राप्यत्वव्यपदेशात् ।

‘बहुनाऽत्र किमुक्तेन यावच्छ्वेतं न गच्छति ।

योगी तावन्न मुक्तः स्यादेष शास्त्रनिर्णयः’ ॥ इत्यादित्यपुराणे ॥ 2 ॥

ॐ नानुमानमतच्छब्दात् ॐ ॥ 03-66 ॥

नानुमानात्मकागमपरिकल्पितरुद्रोऽत्र वाच्यः । भस्मधरोग्रत्वादितच्छब्दाभावात् ।

‘सोऽन्तकः स रुद्रः स प्राणभृत् स प्राणनायकः स ईशो यो हरिर्योऽनन्तो यो विष्णुर्यः परः
परोवरीयान्’

इत्यादिना प्राणग्रन्थिरुद्रत्वादेर्विष्णोरेवोक्तत्वात् । ब्रह्माण्डे च –

‘रुजं द्रावयते यस्माद्गुद्रस्तस्माज्जनार्दनः ।

ईशानादेव चेशानो महैदेवो महत्त्वतः ॥

पिबन्ति ये नरा नाकं मुक्ताः संसारसागरात् ।

तदाधारो यतो विष्णुः पिनाकीति ततः स्मृतः ॥

शिवः सुखात्मकत्वेन शर्वः शंरोधनाद्धरिः ।

कृत्यात्मकमिदं देहं यतो वस्ते प्रवर्तयन् ॥

कृत्तिवासास्ततो देवो विरिञ्चश्च विरेचनात् ।

बृंहणाद्ब्रह्मनामाऽसावैश्वर्यादिन्द्र उच्यते ॥

एवं नानाविधैः शब्दैरेक एव त्रिविक्रमः ।

वेदेषु सपुराणेषु गीयते पुरुषोत्तमः’ इति ।

वामने च –

‘न तु नारायणादीनां नाम्नामन्यत्र सम्भवः ।

अन्यनाम्नां गतिर्विष्णुरेक एव प्रकीर्तितः’ इति ॥

स्कान्दे च –

‘ऋते नारायणादीनि नामानि पुरुषोत्तमः ।

प्रादादन्यत्र भगवान् राजेवर्ते स्वकं पुरम्’ इति

‘चतुर्मुखः शतानन्दो ब्रह्मणः पद्मभूरिति ।

उग्रो भस्मधरो नग्नः कपालीति शिवस्य च ।

विशेषनामानि ददौ स्वकीयान्यपि केशवः’ इति च ब्राह्मे ॥ 3 ॥

ॐ प्राणभृच्च ॐ ॥ 04-67 ॥

एतैरेव हेतुभिर्न जीवो वायुश्च ।

‘अजायमानो बहुधा विजायत’ इति तस्यैव बहुधा जन्मोक्तेः ॥ 04 ॥

ॐ भेदव्यपदेशात् ॐ ॥ 05-68 ॥

न चैक्यं वाच्यम् ।

‘जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानम्’ इति भेद व्यपदेशात् ॥ 05 ॥

ॐ प्रकरणात् ॐ ॥ 06-69 ॥

‘द्वे विद्ये वेदितव्ये’ इति तस्य ह्येतत् प्रकरणम् ॥ 06 ॥

ॐ स्थित्यदनाभ्यां च ॐ ॥ 07-70 ॥

‘द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति’ इति ईशजीवयोः स्थित्यदनोक्तेः ॥ 07 ॥

॥ इति द्युभ्वाधिकरणम् ॥ 01 ॥

‘प्राणो व अशाया भूयान्’ इत्युक्त्वा’ यो वै भूमा तत्सुखम् । इत्युक्तेस्यैव भूमत्वप्राप्तिः ।

‘उत्क्रान्तप्राणान्’ इत्यादिलिङ्गात् प्राणशब्दश्च वायुवाचीत्यतो वक्ति -

ॐ भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात् ॐ ॥ 08-71 ॥

‘सम्प्रसादात्’ पूर्णसुखरूपत्वात् ‘अध्युपदेशात्’ सर्वेशामुपर्युपदेशाच्च विष्णुरेव भूमा ।

‘सहस्रशीर्षं देवं विश्वाक्षं विश्वशम्भुवम् ।

विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं पदम् ॥

विश्वतः परमां नित्यम्’ इति श्रुतिः

‘तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति’

इत्यादिना नोत्क्रामणादिलिङ्गविरोधोऽपि ॥08 ॥

ॐ धर्मोपपत्तेश्च ॐ ॥ 09-72 ॥

सर्वगतत्वादिधर्मोपपत्तेश्च ॥09 ॥

इति भूमाधिकरणम् ॥ 02 ॥

अदृश्यत्वादिगुणा विष्णोरुक्ताः' अदृष्टं द्रष्टृश्रुतं श्रोतु' इत्यादिना ।

'अहं सोममाहनसं भिभर्मि' इत्यादेस्तस्यापि सम्भवान्मध्यमाक्षरस्योक्ता इत्यतो ब्रूते -

ॐ अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॐ ॥ 10-73 ॥

'एतस्मिन् खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च'

इत्यम्बरान्तस्य सर्वस्य धृतेर्ब्रह्मैवाक्षरम् ।

'य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा'

'भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति । एको देवो बहुधा निविष्टः ।

यदा भारं तन्द्रयते स भर्तुम् । पराऽस्य भारं पुनरस्तमेति' ।

'यस्मिन्निदं सञ्च वि चैदि सर्वं यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः' इत्यादि श्रुतेः ।

'पृथिव्यादिप्रकृत्यन्तं भूतं भव्यं भवच्च यत् ।

विष्णुरेको बिभर्तीदं नान्यस्तस्मात् क्षमो धृतौ' इति च स्कान्दे ॥ 10 ॥

ॐ सा च प्रशासनात् ॐ ॥ 11-74 ॥

सा च धृतिः प्रशासादुच्यते ।' एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः'
इत्यादिना ।

तच्च प्रशासनं विष्णोरेव ।

'सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि' ।

'चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीरवीविपत्' इत्यादिश्रुतेः ।

'एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता' ।

'यो हृच्छयस्तमहमिह ब्रवीमि'

'न केवलं मे भवतश्च राजन्

स वै बलं बलीनां चापरेषाम्' इत्यादेश्च ॥ 11 ॥

ॐ अन्यभावव्यावृत्तेश्च ॐ ॥ 12-75 ॥

'अस्थूलमनणु' इत्यादिना स्थूलाण्वादीनामन्यवस्तुस्वभावानां व्यावृत्तेश्च ।

'अस्थूलोऽनणुरमध्यमो मध्यमोऽव्यापको व्यापको

योऽसौ हरिरादिरनादिरविश्वो विश्वः सगुणो निर्गुणः'
इत्यादेर्विष्णोरेव ते धर्माः ।
'अस्थूलोऽनणुरूपोऽसावविश्वो विश्व एव च । विरुद्धधर्मरूपोऽसावैश्वर्यात् पुरुषोत्तमः' । इति च ब्राह्मे ॥ 12 ॥
॥ इति अक्षराधिकरणम् ॥ 03 ॥
'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' इत्यादिना सतः स्रष्टृत्वमुच्यते । तच्चसत्'बहुस्यां प्रजायेय' इति परिणामप्रतीतेर्न विष्णुः । स हि 'अविकारः सदा शुद्धो नित्य आत्मा सदा हरिः' इत्यादिनाऽ तस्यैव हि तल्लक्षणम् । बहुत्वं चाविकारेणैवोक्तं' अजायमानो बहुधा विजायत' इति ॥ 13 ॥
ॐ ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् सः ॐ ॥ 13-76 ॥
'तदैक्षत' इतीक्षतिकर्मव्यपदेशात् स एव विष्णुरत्रोच्यते । 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा', 'नान्यदतोऽस्ति द्रष्टु' इत्यादिना तस्यै व हि तल्लक्षणम् । बहुत्वं चानिकारेणैवोक्तं' अजायमानो बहुधा विजायत' इति ॥ 13 ॥
॥ इति सदधिकरणम् ॥ 04 ॥
चन्द्रादित्याद्याधारत्वं विष्णोरुक्तम् । तच्च'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्म पुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तर आकाशः'.....' किं तदत्र विद्यते.....' 'उभे अस्मिन् द्यावा पृथिवी अन्तरेव समाहिते । उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ । विद्युन्नक्षत्राणि' इत्यादिनाऽऽकाशस्य प्रतीयते । स चाकाशो न विष्णुः । तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्मं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्' इति श्रुतेरित्यत आह- .
ॐ दहर उत्तरेभ्यः ॐ ॥ 14-77 ॥

‘य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः
सोऽन्वेष्टव्य स विजिज्ञासितव्यः’

इत्यादिभ्य उत्तरेभ्यो गुणेभ्यो दहरे विष्णुरेव ।

‘योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति’

‘स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः’

इत्यादिना विष्णोरेव हि ते गुणाः ।

‘नित्यतीर्णाशनायादिरेक एव हरिः स्वतः ।

अशनायादिकानन्ये तत्प्रसादात् तरन्ति हि’ इति पाद्मे ।

सापेक्षनिरपेक्षयोश्च निरपेक्षं स्वीकर्तव्यम् ॥

‘सत्यकामोऽपरो नास्ति तमृते विष्णुमव्ययम् ।

सत्यकामत्वमन्येषां भवेत् तत्काम्यकामिता’ इति च स्कान्दे ॥ 14 ॥

ॐ गतिशब्दाभ्यां तथा हि दृष्टं लिङ्गं च ॐ ॥ 15-78 ॥

अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्ति’

इति सुप्तस्य तद्गतिर्ब्रह्मशब्दश्चोच्यते ।

‘सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति’ इति श्रुतेस्तं हि सुप्तो गच्छति ।

‘अरश्च ह वैण्यश्चारणवौ ब्रह्मलोके’ इति लिङ्गं च तथा दृष्टम् ।

‘अरश्च वै ण्यश्च सासमुद्रौ तत्रैव सर्वाभिमतप्रदौ द्वौ’

इत्यादिना तस्यैव हि तल्लक्षणत्वेनोच्यते ॥ 15 ॥

ॐ धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः ॐ ॥ 16-79 ॥

‘एष सेतुर्विधृतिः’ इति धृतेः ‘एष भूताधिपतिरेण भूतपालः’ इत्याद्यस्य महिम्नोऽस्मिन्नुपलब्धेः ।

‘एतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च’

‘एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी’

‘स हि सर्वाधिपतिः स हि सर्वकालः स ईशः स विष्णुः’

‘पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम्’

इत्यादि श्रुतिभ्यस्तस्य ह्येष महिमा ।

‘सर्वेशो विष्णुरेवैको नान्योऽस्ति जगतः पतिः’ इति स्कान्दे ॥ 16 ॥

ॐ प्रसिद्धेश्च ॐ ॥ 17-80 ॥

‘तत्रापि दहं गगनं विशोकस्तस्मिन् यदन्तस्तुदुपासितव्यम्’ इति प्रसिद्धेश्च । तदन्तस्थापेक्षत्वाच्च
सुषिरश्रुतिविरोधः ॥ 17 ॥

ॐ इतरपरामर्शात् स इति चेन्नासम्भवात् ॐ ॥ 18-81 ॥

‘परंज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्ठद्यते’

‘एष आत्मेति होवाच’ इति जीवपरामर्शात् स इति चेन्न ।

तस्य स्वतोऽपहतपाप्मत्वाद्यसम्भवात् ॥ 18 ॥

ॐ उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु ॐ ॥ 19-82 ॥

‘स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाणः’ इत्यादुत्तरवचनाज्जीव एवेति चेन्न । तत्र हि
परमेश्वरप्रसादादाविर्भूतस्वरूपो मुक्त उच्यते। यत्प्रसादात् स मुक्तो भवति स भगवान् पूर्वोक्तः ॥ 19 ॥

ॐ अन्यार्थश्च परामर्शः ॐ ॥ 20-83 ॥

‘यं प्राप्य स्वेन रूपेण जीवोऽभिनिष्पद्यते स एष आत्मा’ इति परमात्मार्थश्च परामर्शः ॥ 20 ॥

ॐ अल्पश्रुतेरिति चेत् तदुक्तम् ॐ ॥ 21-84 ॥

‘दहर’ इत्यल्पश्रुतेर्नेति चेन्न । ‘निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च’ इत्युक्त्वात् ‘एष म आत्माऽन्तर्हृदये
ज्यायन्’ इति श्रुत्युक्तत्वाच्च ॥ 21 ॥

॥ इति दहराधिकरणम् ॥

अदृश्यत्वादयः परमेश्वरगुणा उक्ताः ।

‘तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्’

‘तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्’

इत्यादिना ज्ञानिसुखस्याप्यनिर्देश्यत्वमज्ञेयत्वं चोच्यत इत्यतो वक्ति-

ॐ अनुकृतेस्तस्य च ॐ ॥ 22-85 ॥

‘तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्’ इत्यनुकृतेः,

‘तस्य भासा सर्वमिदं विभाति’

इति वचनाच्च परमात्मैवानिर्देश्यसुखरूपः ।

न हि ज्ञानिसुखमनुभाति सर्वम् । न च तद्भासा ।

‘अहं तत्तेजो रश्मीन्’ इति नारायणभासा हि सर्वं भाति ॥ 22 ॥

ॐ आपि स्मर्यते ॐ ॥ 23-86 ॥

‘यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्’ इति

‘न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम’ इति च ॥ 23 ॥

॥ इति अनुकृत्यधिकरणम् ॥ 06 ॥

विष्णुरेव जिज्ञास्य इत्युक्तम् । तत्र

‘ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।

मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते’

इति सर्वदेवोपास्यः कश्चित् प्रतीयते । स च

‘एवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान् पृथगेव सन्निधत्ते’

‘योऽयं मध्यमः प्राणः’ ‘कुविदङ्ग’

इत्यादिना प्राणव्यवस्थापकत्वान्मध्यमत्वात् सर्वदेवोपास्यत्वाच्च वायुरेवेति प्रतीयते । अतोऽब्रवीत् ॥

ॐ शब्दादेव प्रमितः ॐ ॥ 24-87 ॥

वामनशब्दादेव विष्णुरिति प्रमितः । न हि श्रुतेर्लिङ्गं बलवत् ।

‘श्रुतेर्लिङ्गं समाख्या च वाक्यं प्रकरणं तथा ।

पूर्वं पूर्वं बलीयः स्यादेवमागमनिर्णय’ इति स्कान्दे ॥

तच्चलिङ्गं विष्णोरेव । तस्मैव प्राणत्वोक्तेः ‘तद्वैत्वं त्वं प्राणो अभवः’ इति ॥ 24 ॥

ॐ हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात् ॐ ॥ 25-88 ॥

सर्वगतस्यापि तस्याङ्गुष्ठमात्रत्वं हृद्यवकाशापेक्षया युज्यते । इतरप्राणिनामङ्गुष्ठाभावेऽपि मनुष्याधिकारत्वान्न विरोधः ॥ 25 ॥

॥ इति वामनाधिकरणम् ॥ 07 ॥

मनुष्याणामेव वेदविद्यायामधिकार इत्युक्तम् ।
तिर्यगाद्यपेक्षयैव मनुष्यत्वविशेषणमुक्तं, न तु देवाद्यपेक्षयेत्याह-

ॐ तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात् ॐ ॥ 26-89 ॥

तदुपरि मनुष्याणां सतां देवादित्वप्राप्युपरि । सम्भवति हि तेषां विशिष्टबुद्ध्यादिभावात् । तिर्यगादीनां तदभावादभावः । तेषामपि यत्र विशिष्टबुद्ध्यादिभावस्तत्राविरोधः । निषेदभावात् । दृश्यन्ते हि जरितार्यादयः ॥ 26 ॥

ॐ विरोधः कर्मणेति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ॐ ॥ 27-90 ॥

मानुषा एव देवादयो भवन्तीति तदुपरीत्युक्तम् । तत्र यदि मनुष्याः सन्तो देवादयो भवन्ति तत्पूर्वं देवताभावाद्देवतोद्दिष्टकर्मणि विरोध इति चेन्न । अनेकेषां देवतापदप्राप्तेर्दर्शनात् ।

‘ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः’ इति ॥ 27 ॥

ॐ शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॐ ॥ 28-91 ॥

‘वाचा विरूप नित्यया’ इत्यादिश्रुतेराप्त्यनिश्चयान्नित्यत्वापेक्षत्वाच्च मूलप्रमाणस्य, स्वतः प्रामाण्यप्रसिद्धेश्च नित्यत्वाद्देवस्य तदुदितानां देवानामनित्यत्वात् पुनरन्यभावनियमाभावाच्च शब्दे विरोध इति चेन्न ।

‘सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्’

‘यथैव नियमः काले सुरादिनियमस्तथा ।

तस्मान्नानीदृशं कापि विश्वमेतद्भविष्यति’ ॥

इत्यादेरत एव शब्दात् तेषां प्रभवनियमात्, महतां प्रत्यक्षात् । यथेदानीं तथोपर्यपि देवा भविष्यन्तीतीतरेषामनुमानाच्च ॥ 28 ॥

ॐ अत एव च नित्यत्वम् ॐ ॥ 29-92 ॥

अत एव शब्दस्य नित्यत्वादेव च देवप्रवाहनित्यत्वं युक्तम् ॥ 29 ॥

ॐ समाननामरूपत्वाच्चवृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च ॐ ॥ 30-93 ॥

अतीतानागतानां देवानां समाननामरूपत्वात् प्राप्तपदानां मुक्त्याऽवृत्तावप्यविरोधः ।

‘यथापूर्वम्’ इति दर्शनात् ।

‘अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ।

वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः’ इति स्मृतेश्च ॥ 30 ॥

ॐ मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः ॐ ॥ 31-94 ॥

‘वसूनामेवैको भूत्वा’ इत्यादिना प्राप्यफलत्वात् प्राप्तपदानां देवानां मध्वादिविद्यास्वनधिकारं जैमिनिर्मन्यते ॥ 31 ॥

ॐ ज्योतिषि भावाच्च ॐ ॥ 32-95 ॥

ज्योतिषि सर्वज्ञत्वे भावाच्च । आदित्यप्रकाशेऽन्तर्भावत् तज्ज्ञाने सर्ववस्तूनामान्तर्भावात् । नित्यसिद्धत्वाच्च विद्यानाम् ॥ 32 ॥

ॐ भावं तु बादरायणोऽस्ति हि ॐ ॥ 33-96 ॥

फलविशेषभावात् प्राप्तपदानामपि देवानां मध्वादिष्वप्यधिकारं बादरायणो मन्यते । अस्ति हि प्रकाशविशेषः ।

‘यावत्सेवा परे तत्वे तावत्सुखविशेषता ।

सम्भवाच्च प्रकाशस्य परमेकमृते हरिम् ॥

तेषां सामर्थ्ययोगाच्च देवानामप्युपासनम् ।

सर्वं विधीयते नित्यं सर्वयज्ञादिकर्म च’ इति स्कान्दे ॥

उक्तफलानधिकारमात्रं जैमिनिमतम् । अतो न मतविरोधः ।

‘सर्वज्ञस्यैव कृष्णस्य त्वेकदेशविचिन्तितम् ।

स्वीकृत्य मुनयो ब्रूयुस्तन्मतं न विरुध्यते’ इति ब्राह्मे ॥ 33 ॥

॥ इति देवताधिकरणम् ॥ 08 ॥

मनुष्याधिकारत्वादित्युक्तेऽविशेषाच्छूद्रस्यापि 'अह हारे त्वा शूद्र' इति पौत्रायणोक्तेरधिकार इत्यत आह –

ॐ शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाऽऽद्रवणात् सूच्यते हि ॐ ॥ 34-97 ॥

नासौ पौत्रायणः शूद्रः, शुचाऽऽद्रवणमेव शूद्रत्वम् ।

'कम्बर एनमेतत्सन्तम्' इत्यनादरश्रवणात् ।

'स ह सञ्जिहान एव क्षत्तारमुवाच' इति सूच्यते हि ॥ 34 ॥

ॐ क्षत्रियत्वावगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ॐ ॥ 35-98 ॥

अयमश्वतरीरथ इति चित्ररथसम्बन्धित्वेन लिङ्गेन पौत्रायणस्य क्षत्रियत्वावगतेश्च ।

'रथस्त्वश्वतरीयुक्तश्चित्र इत्यभिधीयते' इति ब्राह्मे ।

'यत्र वेदो रथस्तत्र न वेदो यत्र नो रथः' इति ब्रह्मवैवर्ते ॥ 35 ॥

ॐ संस्कारपरामर्शात् तदभावाभिलापाच्च ॐ ॥ 36-99 ॥

'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत, तमध्यापयीत'

इत्यद्ययनार्थं संस्कारपरामर्शात् ।

'नाग्निर्न यज्ञो न क्रीया न संस्कारो न व्रतानि शूद्रस्य' इति पैङ्गिश्रुतौ संस्काराभावाभिलापाच्च ।

उत्तमस्त्रीणां तु न शूद्रवत् ।

'सपत्नीं मे पराधम' इत्यादिष्वधिकारदर्शनात् ।

संस्काराभावेनाभावस्तु सामान्येन । अस्ति च तासां संस्कारः ।

'स्त्रीणां प्रदानकर्मेव यथोपनयनं तथा' इति स्मृतेः ॥ 36 ॥

ॐ तदभावाभिधाने च प्रवृत्तेः ॐ ॥ 37-100 ॥

'नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्मि' इति सत्यवचनेन सत्यकामस्य शूद्रत्वाभावाभिधाने

हारिद्रुमतस्य 'नैतद्ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति' इति तत्संस्कारे प्रवृत्तेश्च ॥ 37 ॥

ॐ श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च ॐ ॥ 38-101 ॥

‘श्रवणे त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रपरिपूर्णम् । अध्ययने जिह्वाच्छेदः अर्थावधारणे हृदयविदारणम्’ इति प्रतिषेधात् ।

‘नाभिर्न यज्ञः शूद्रस्य तथैवाद्ययनं कुतः ।
केवलैव तु शुश्रूषा त्रिवर्णानां विधीयते’ इति स्मृतेश्च ।
विधुरादीनां तूत्पन्नज्ञानत्वात् कश्चिद्विशेषः ॥ 38 ॥

इति अपशूद्राधिकरणम् ॥ 09 ॥

‘यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।
महद्वयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति’
इत्युद्यतवज्रज्ञानान्मोक्षः श्रूयत इत्यतोऽब्रवीत् ।

ॐ कम्पनात् ॐ ॥ 39-102 ॥

एजतीति कम्पनवचनादुद्यतवज्रो भगवानेव ।

‘को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्’ तथा चेतोऽर्पणार्थं हि निगत्यते इति हि श्रुतिः ।

‘प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः’ इति च
‘नभस्वतोऽपि सर्वाः स्युश्चेष्टा भगवतो हरेः ।
किमुतान्यस्य जगतो यस्य चेष्टा नभस्वतः’ इति स्कान्दे ॥
‘चक्रं चङ्गमणादेष वर्जनाद्वज्रमुच्यते ।
खण्डनात् खड्ग एवैष हेतिनामा स्वयं हरिः’ इति ब्रह्म वैवर्ते ॥ 39 ॥

इति कम्पनाधिकरणं ॥ 10 ॥

हृदय आहितं ज्योतिः परमात्मेत्युक्तम् । तत्र योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः’ इत्यत्र उभौ लोकावनुसञ्चरति’ इति वचनाज्जीव इति प्रतीयत इत्यत उच्यते –

ॐ ज्योतिर्दर्शनात् ॐ ॥ 40-103 ॥

‘विष्णुरेव ज्योतिर्विष्णुरेव ब्रह्म विष्णुरेवात्मा विष्णुरेव बलं विष्णुरेव यशो विष्णुरेवानन्दः’ इति दर्शनाच्चतुर्वेदशिखायां ज्योतिर्विष्णुरेव । ‘प्राज्ञेनात्मनाऽन्वारूढ उत्सर्जघ्नाति’ इति वचनात् सस्यापि लोकसञ्चरणमस्त्येव ॥ 40 ॥

इति ज्योतिरधिकरणं ॥ 11 ॥

सर्वाधारत्वम् विष्णोरुक्तम् । तच्च ‘आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता’ इत्यत्राकाशस्य प्रतीयते । वै नामेति प्रसिद्धोपदेशात् । प्रसिद्धाकाशश्चाङ्गीकर्तव्य इत्यत उच्यते –

ॐ आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ॐ ॥ 41-104 ॥

‘ते यदन्तरा तद्ब्रह्म’ इत्यर्थान्तरत्वादिव्यपदेशाकाशो हरिरेव ।
‘आवर्णं यतो वाचो निवर्तन्ते’ इत्यादिश्रुतेस्तस्यैव हि तलक्षणम् ।
‘अनामासोऽप्रसिद्धत्वादरूपो भूतवर्जनात्’ इति ब्राह्मे ॥ 41 ॥

इति आकाशाधिकरणम् ॥ 12 ॥

असङ्गत्वं परमात्मन उक्तम् । तच्च
‘स यत्तत्र किञ्चित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुषः’
इति स्वप्नादिद्रष्टुः प्रतीयते । स च जीवः प्रसिद्धेरित्यतो वक्ति –

ॐ सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन ॐ ॥ 42-105 ॥

‘प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेदनान्तरम्’
‘प्राज्ञेनात्मनाऽन्वारूढ उत्सर्जघ्नाति’
इति भेदव्यपदेशान्न जीवः, पर एवासङ्गः । स्वप्नादिद्रष्टृत्वं च सर्वज्ञत्वात् तस्यैव युज्यते ॥ 42 ॥

॥ इति सुषुप्त्यधिकरणम् ॥ 13 ॥

‘एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य’ इति ब्राह्मणस्यापि नित्यमहिमा प्रतीयते । स च ब्राह्मणः ‘स वा एष महानज आत्मा’ इत्यजशब्दाद्विरिञ्च इति प्राप्तम् । देवानां च विद्याकर्मणोः पदप्राप्तिः सूचिता तदुपर्यपीति । अतो ब्रवीति –

ॐ पत्यादिशब्देभ्यः ॐ ॥ 43-106 ॥

‘सर्वस्याधिपतिः सर्वस्येशानः स वा एष नेति नेति’

इत्यादि शब्देभ्यो नित्यमहिमा विष्णुरेव ।

‘उतामृतत्वस्येशानः । यदन्नेनादतिरोहति’

‘सप्तार्धगर्भाभुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि’

‘स योऽतोऽश्रुतः’

इत्यादि श्रुतिभ्यस्तस्यैव हि ते शब्दाः ॥ 43 ॥

॥ इति ब्राह्मणाधिकरणम् ॥ 14 ॥

इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्र भाष्ये प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः

॥ 01-03 ॥

चतुर्थः पादः ॥ 01-04 ॥

॥ ॐ श्रुतिलिङ्गादिभिरन्यत्रैव प्रसिद्धनामापि शब्दानां सामस्त्येन विशेषहेतुभिर्विष्णावेव प्रवृत्तिं दर्शयत्यस्मिन् पादे ।

ॐ आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च ॐ

॥ 01-107 ॥

‘तत्तु समन्वयात्’ इति सर्वशब्दानां परमेश्वरे समन्वय उक्तः । तन्न युज्यते । यतो ‘अव्यक्तात् पुरुषः परः’ इति साङ्ख्यानमानपरिकल्पितं प्रधानमप्येकेषां शाखिनामुच्यत इति चेन्न, तस्यैव पारतन्त्र्याच्छरीररूपके ऽव्यक्ते विन्यस्तस्य परमात्मन एवाव्यक्तशब्देन गृहीतेः । कप्रत्ययः कुत्सने । परमात्मना एवाव्यक्तेशब्दः । । तत्तन्त्रत्वेन तच्छरीररूपत्वादितरस्याप्यव्यक्तशब्दः ।

‘तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्’ इति दर्शयति च ।

‘अव्यक्तमचलं शान्तं निष्कलं निष्क्रियं परम् ।

यो वेद हरिमात्मानं स भयादनुमुच्यते’ ।

इति पिप्पलादशाखायाम् ।

‘अक्षरं ब्रह्म परमम्’ इत्युक्त्वा ‘अव्यक्तो ऽक्षर इत्युक्तः’ इति वचनाच्च ॥ 01 ॥

ॐ सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् ॐ ॥ 02-108 ॥

सूक्ष्ममेवाव्यक्तशब्देनोच्यते । तद्व्यक्ततामर्हति । सूक्ष्मत्वं च मुख्यं तस्यैव ।
‘यत्तत्सूक्ष्मं परमं वेदितव्यं नित्यं पदं वैष्णवं ह्यामनन्ति । यत्तल्लोका न विदुर्लोकसारं विन्दन्त्येतत् कवयो योगनिष्ठाः’ ॥
इति च पिप्पलादशाखायाम् । मुख्ये च विद्यमाने नामुख्यं युक्तम् ॥ 02 ॥
ॐ तदधीनत्वादर्थवत् ॐ ॥ 03-109 ॥
तदधीनत्वाच्चाव्यक्तादीनां तस्यैवाव्यक्तत्वपरावरत्वादिकमर्थवत् । ‘यदधीनो गुणो यस्य तद्गुणी सोऽभिधीयते । यथा जीवः परात्मेति यथा राजा जयीत्यपि’ इति च स्कान्दे ॥ 03 ॥
ॐ ज्ञेयत्वावचनाच्च ॐ ॥ 04-110 ॥
अन्यस्य न वाच्यत्वं युज्यते ॥ 04 ॥
ॐ वदतीती चेन्न प्राज्ञो हि ॐ ॥ 05-111 ॥
‘महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते’ इति ज्ञेयत्वं वदतीती चेन्न । प्राज्ञः परमात्मा हि तत्रोच्यते । ‘अणोरणीयान्महतो महीयान्’ इति तस्यैव हि महतो महत्वम् । सर्वस्मात् परस्य महतोऽपि परत्वं युज्यते ॥ 05 ॥
ॐ प्रकरणात् ॐ ॥ 06-112 ॥
‘सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमम् पदम्’ इति तस्य ह्येतत् प्रकरणम् ॥ 06 ॥
ॐ त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ॐ ॥ 07-113 ॥
त्रयाणामेव पितृसौमनस्यस्वर्ग्याग्निपरमात्मनां प्रश्न उपन्यासश्च । ‘अविज्ञातप्रार्थनं च प्रश्न इत्यभिधीयते’ ॥ इति वचनान्न विरोधः ॥ 07 ॥
ॐ महद्वच्च ॐ ॥ 08-114 ॥
यथा महच्छब्दो महत्तत्त्वे प्रसिद्धोऽपि परममहत्त्वात् परमात्मन एव मुख्यः एवमितरेऽपि ॥ 08 ॥

ॐ चमसवदविशेषात् ॐ ॥ 09-115 ॥

यथा चमशब्दोऽन्यत्र प्रसिद्धोऽपि 'इदं तच्छिर एष ह्यर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुद्धः' इति श्रुतेः

शिरोवाचकः एवमव्यक्तादिशब्दाः सर्वेऽन्यत्र प्रसिद्धा अपि,

'नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति तं वै विष्णुं परममुदाहरन्ति'

इत्यादि श्रुतेः परमात्माभिधायका एव । अविशेषाच्छ्रुतेः ॥ 09 ॥

॥ इति अनुमानिकाधिकरणम् ॥ 01 ॥

'वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजेत' इत्यादि कर्माभिधायकस्य क्रमादि विरोधान्न युज्यत इत्यत आहा –

ॐ ज्योतिरुपक्रमात् तु तथा ह्यधीयत एके ॐ ॥ 10-116 ॥

ज्योतिरादिकर्मवाचकत्वेन प्रसिद्धाभिधेयोऽपि स एव । 'एष इमं लोकमभ्यार्चत' इत्युपक्रम्य 'ता वा

एताः सर्वा ऋचः सर्वे वेदाः सर्वे घोषाः एकैव व्याहृतिः प्राण एव प्राण ऋच इत्येव विद्यात्

इति ह्यधीयते एके ॥ 10 ॥

ॐ कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिदविरोधः ॐ ॥ 11-117 ॥

मधुविद्यादिवत् सर्वशब्दार्थत्वेन परस्य कल्पनोपदेशाच्च न कर्मक्रमादिविरोधः ॥ 11 ॥

॥ इति ज्योतिरुपक्रमाधिकरणम् ॥ 02 ॥

ॐ न सङ्घोपसङ्ग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च ॐ ॥ 12-118 ॥

'यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः'

इत्यादिषु बहुसङ्घोपसङ्ग्रहेऽपि न विरोधः ।

तस्यैवाकाशादिषु नानाभावात् तदतिरिक्तस्वरूपत्वाच्च ॥ 12 ॥

पञ्च पञ्चजनानाह –

ॐ प्राणादयो वाक्यशेषात् ॐ ॥ 13-119 ॥

'प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रमन्नस्यान्नं मनसो मनः' इति वाक्यशेषात् ॥ 13 ॥

ॐ ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने ॐ ॥ 14-120 ॥

'तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिः' इत्यनेन काण्वानां पञ्चकम् । । 14 ॥

॥ इति नसङ्घोपसङ्गहाधिकरणम् ॥ 03 ॥

अवान्तरकारणत्वेनापि एवोच्यत इति वक्ति-

ॐ कारणत्वेन चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः ॐ ॥ 15-121 ॥

आकाशादिष्ववान्तरकारणत्वेन स एव स्थितः । यथाव्यपदिष्टस्यैव परस्य 'य आकाशे तिष्ठन्'
इत्यादिना आकाशादिषूक्तेः ॥ 15 ॥

॥ इति आकाशाधिकरणम् ॥ 04 ॥

सर्वशब्दानां परमात्मवाचकत्वे कथमन्यत्र व्यवहार इत्यतो ब्रवीति-

ॐ समाकर्षात् ॐ ॥ 16-122 ॥

परमात्मवाचिनः शब्दा अन्यत्र समाकृष्य व्यवहियन्ते ।

'परस्य वाचकाः शब्दा समाकृष्येतरेष्वपि ।

व्यवहियन्ते सततं लोकवेदानुसारतः' इति पाद्रे ॥ 16 ॥

तर्हि कथं तेषां शब्दानां जगति प्रसिद्धिः ?-

ॐ जगद्वाचित्वात् ॐ ॥ 17-123 ॥

जगति व्यवहारो लोकस्य । न तु परमात्मनि तथा । अतो जगति प्रसिद्धिः शब्दानाम् ॥ 17 ॥

ॐ जीवमुख्यप्राणलिङ्गादिति चेत् तद्व्याख्यातम् ॐ ॥ 18-124 ॥

तदधीनत्वात् तच्छब्दवाच्यत्वमित्युक्तम् । तज्जीवमुख्यप्राणयोर्लिङ्गम् ।

'अस्य यदैकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति'

'वायुना हि लोका नेनीयन्ते'

इत्यादि श्रुतिभ्य इति चेन्न । उपासात्रैविध्यादिति व्याख्यातत्वात् ॥ 18 ॥

ॐ अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके ॐ ॥ 19-125 ॥

परमात्मज्ञानार्थं कर्मादिकमपि वदतीति जैमिनिः ।

'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ।

तस्म्यै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये'

‘कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति । यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन’

इत्यादिप्रश्नव्याख्यानाभ्याम् ।

एवमपि चैके पठन्ति ‘यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति’ इति ॥ 19 ॥

ॐ वाक्यान्वयात् ॐ ॥ 20-126 ॥

वाक्यस्याप्येवमन्वयो युज्यते पृथक्पृथक् स्थितस्यापि परमात्मना ॥ 20 ॥

ॐ प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः ॐ ॥ 21-127 ॥

‘नान्यः पन्था अयनाय विद्यते’ इति प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गत्वेन कर्मादिकमुच्यत इत्याश्मरथ्यः ।

यस्मादेवमनित्यफलमन्यत् तस्मान्नान्यः पन्था इति ॥ 21 ॥

ॐ उत्क्रमिष्यत एवंभावादित्यौडुलोमिः ॐ ॥ 22-128 ॥

उत्क्रमिष्यतो मुमुक्षोः कर्मादिना भाव्यं साधनसाधनत्वेन । अतस्तद्व्यक्तीत्यौडुलोमिर्मन्यते ॥ 22 ॥

ॐ अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः ॐ ॥ 23-129 ॥

सर्वं परमात्मन्यवस्थितमिति वक्तुं तद्वचनमिति काशकृत्स्नः ।

‘कृष्णद्वैपायनमतादेकदेशविदः परे ।

वदन्ति ते यथाप्रज्ञं न विरोधः कथञ्चन’ इति पाद्मे ॥ 23 ॥

॥ इति समाकर्षाधिकरणम् ॥ 05 ॥

स्त्रीशब्दा अपि तस्मिन्नेवेत्याह-

ॐ प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ॐ ॥ 24-130 ॥

‘हन्तैतमेव पुरुषं सर्वाणि नामान्यभिवदन्ति यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः

समुद्रमभिविशन्त्येवमेवैतानि नामानि सर्वाणि पुरुषमभिविशन्ति’

इति प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् प्रकृतिशब्दवाच्योऽपि स एव ॥ 24 ॥

ॐ अभिध्योपदेशाच्च ॐ ॥ 25-131 ॥

‘मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्’ ।

‘महामायेत्यविद्येति नियतिर्मोहिनीति च ।

प्रकृतिर्वासनेत्येवं तवेच्छाऽनन्त कथ्यते' ॥
इति वचनात् तदभिद्यैव प्रकृतिशब्देनोच्यते ।
'सोऽभिध्या स जूतिः स प्रज्ञा स आनन्दः'
इति श्रुतेरभिध्या च स्वरूपमेव ।
'ध्यायति ध्यानरूपोऽसौ सुखी सुखमतीव च ।
परमैश्वर्ययोगेन विरुद्धार्थतयेष्यते' इति ब्रह्माण्डे ॥ 25 ॥

ॐ साक्षाच्चोभयाम्नात् ॐ ॥ 26-132 ॥

'एष स्येष पुरुष एष प्रकृतिरेष आत्मैष ब्रह्मैष लोक एष अलोको योऽसौ हरिरादिरनादिरनन्तोऽन्तः
परमः पराद्विश्वरूपः'
इति पैङ्गिश्रुतौ साक्षादेव प्रकृतिपुरुषत्वाम्नात् ॥ 26 ॥

ॐ आत्मकृतेः परिणामात् ॐ ॥ 27-133 ॥

प्रकर्षेण करोतीति प्रकृतिरिति योगाच्च । प्रकृतावनुप्रविश्य तां परिणाम्य तत्परिणामकत्वेन तत्र
स्थित्वाऽऽत्मनो बहुधाकरणात् ।
'अथ हैष आत्मा प्रकृतिमनुप्रविश्यात्मानं बहुधा चकार ।
तस्मात् प्रकृतिस्तस्मात् प्रकृतिरित्याचक्षते' इति भाल्लवेयश्रुतिः ।
'अविकारोऽपि परमः प्रकृतिं तु विकारिणीम् ।
अनुप्रविश्य गोविन्दः प्रकृतिश्चाभिधीयते' इति नारदीये ।
नचान्यत् कल्प्यम्, अप्रमाणिकत्वात् ॥ 27 ॥

ॐ योनिश्च हि गीयते ॐ ॥ 28-134 ॥

अव्यवधानेनोत्पत्तिद्वारत्वं प्रकृतित्वम् । तच्चास्यैव गीयते
'यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः' इति ।
'व्यवधानेन सूतिस्तु पुंस्त्वम् विद्वद्विरुच्यते ।
सूतिरव्यवधानेन प्रकृतित्वमिति स्थितिः ॥
उभयात्मकसूतित्वाद्वासुदेवः परः पुमान् ।

प्रकृतिः पुरुषश्चेति शब्दैरेकोऽभिधीयते' इति ब्रह्माण्डे ॥ 28 ॥

॥ इति प्रकृत्यधिकरणम् ॥ 06 ॥

ॐ एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ॐ ॥ 29-135 ॥

एतेन सर्वे शून्यादिशब्दा अपि व्याख्याताः ।

'एष ह्येव शून्य एष ह्येव तुच्छ एष ह्येवाभाव एष ह्येवाव्यक्तोऽदृश्योऽचिन्त्यो निर्गुणश्च' इति महोपनिषदि।

'शमूनं कुरुते विष्णुरदृश्यः सन् परः स्वयम् ।

तस्माच्छून्यमिति प्रोक्तस्तोदनात्तुच्छ उच्यते ॥

नैष भावयितं योग्यः केनचित् पुरुषोत्तमः ।

अतोऽभावं वदन्त्येनं नाशयत्वान्नाश इत्यपि ॥

सर्वस्य तदधीनत्वात् तत्तच्छब्दाभिधेयता ।

अन्येषां व्यवहारार्थं मिष्यते व्यवहर्तृभिः'

इति महाकौर्मै।

एतेन तदधीनत्वाद्युक्तयुक्तिसमुदायेन ।

'अवधारणार्थं सर्वस्याप्युक्तस्याध्यायमूलतः ।

द्विरुक्तिं कुर्वते प्राज्ञा अध्यायान्ते विनिर्णये'

इति वराहसंहितायाम् ॥ 29 ॥

एतेन सर्वे व्याख्याताधिकरणम् ॥

॥ इति श्री मद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये प्रथमाध्यायस्य चतुर्थं पादः ॥ 01-04 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्य विरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये प्रथमाध्यायः

(समन्वयाध्यायः) ॥ 01 ॥

द्वितीयोऽध्यायः (अविरोधाध्यायः) ॥ 02 ॥

प्रथमः पादः ॥ 02-01 ॥

उक्तेऽर्थेऽविरोधं दर्शयत्यनेनाध्यायेन ।

प्रथमपादे युक्तविरोधम् । प्रथमतः स्मृत्यविरोधं दर्शयति-

ॐ स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ॐ

॥ 01-136 ॥

सर्वज्ञा हि रुद्रादयः । अतस्तेषां वचनविरोधेऽप्रामाण्यमेव स्यादिति चेन्न । अन्यस्मृतीनां विष्णवादिभिर्नितरां सर्वज्ञैरेव कृतत्वाच्छूतेराधिक्यं सिद्ध्यति ॥ 01 ॥

ॐ इतरेषां चानुपलब्धेः ॐ ॥ 02-137 ॥

इतरेषां तासु स्मृतिषूक्तानां फलादीनां प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धेरप्रामाण्यं तासां युक्तम् । चशब्देन भागोपलब्धिरङ्गीकृता ॥ 02 ॥

ॐ एतेन योगः प्रत्युक्तः ॐ ॥ 03-138 ॥

योगफलं प्रत्यक्षोपलभ्यमिति न मन्तव्यम् । उक्ताभ्यासे तत्काल एव फलादृष्टेः ॥ 03 ॥

॥ इति स्मृत्यधिकरणम् ॥ 01 ॥

ॐ न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॐ ॥ 04-139 ॥

नैवं श्रुतेस्तदनुसारिस्मृतेश्च तदुक्तानुपलब्धेरप्रामाण्यम् । विलक्षणत्वात् नित्यत्वात् तदनुसारित्वाच्च ।

न हि नित्ये दोषाः कल्प्याः । स्वतश्च प्रामाण्यम् । अन्यथाऽनवस्थितेः ।

‘न चक्श्नुर्न श्रोत्रं न तर्को न स्मृतिर्वेधा ह्येवैनं वेदयन्ति’

इति भाल्लवेयश्रुतेश्च ।

नित्यत्वं च शब्दादेव प्रतीयते’वाचा विरूप नित्यया’ इत्यादेः ।

‘अनादिनिधना नित्या’ इति च स्मृतिः ॥ 04 ॥

ॐ दृश्यते तु ॐ ॥ 05-140 ॥

अधिकारिणां फलम् । भविष्यत्पुराणे च

‘ऋग्यजुः सामाथर्वारव्या मूलरामायणं तथा ।

भारतं पञ्चरात्रं च वेदा इत्येव शब्दिताः ॥

पुराणानि च यानीह वैष्णवानि विदो विदुः ।

स्वतः प्रामाण्यमेतेषां नात्र किञ्चिद्विचार्यते ॥

यत् तेषूक्तं न दृश्येत पूर्वकर्मात्र कारणम् ।

नाप्रामाण्यं भवेत् तेषां दृश्यते ह्यधिकारतः ॥

इतः प्रामाण्यमन्येषां न स्वतस्तु कथञ्चन ।

अदृश्योक्तौ ततस्तेषामप्रामाण्यं न संशयः’ इति ॥ 05 ॥

॥ इति नविलक्षणत्वाधिकरणं ॥ 02 ॥

‘मृदब्रवीत्’ आपोऽब्रुवन्’ इत्यादिवचनाद्युक्तिविरुद्धो वेद इत्यतोऽब्रवीत् य-

ॐ अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॐ ॥ 06-141 ॥

मृदाद्यभिमानिदेवता तत्र व्यपदिश्यते । तासां चेतरेभ्यो विशिष्टं

सामर्थ्यमनुगतिश्च सर्वत्र । अतस्तासां सर्वमुक्तं युज्यते ॥ 06 ॥

ॐ दृश्यते च ॐ ॥ 07-142 ॥

तासां सामर्थ्यं महद्भिः । भविष्यत्पुराणे च –

‘पृथिव्याद्यभिमानिन्यो देवताः प्रथितौजसः ।

अचिन्त्याः शक्तयस्तासां दृश्यन्ते मुनिभिश्च ताः ।

ताश्च सर्वगता नित्यं वासुदेवैकसंश्रयाः’ इति ॥ 07 ॥

॥ इति अभिमान्यधिकरणम् ॥ 03 ॥

‘असदेवेदमग्र आसीत्’ असतः सदजायत’

इत्यादिनाऽसतः कारणत्वोक्तेर्विरोध इत्यतो वक्ति-

ॐ असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात् ॐ ॥ 08-143 ॥

प्रतिषेधमात्रत्वान्नासतः कारणत्वं युक्तम् । असतः कारणत्वाद्युक्तिविरुद्धं वेदवाक्यमित्येतदत्र
निषिद्यते । सर्वशब्दानां ब्रह्मणि समन्वयेऽपि 'तदधीनत्वादर्थवत्' इत्यादिनाऽमुख्यत्वेनान्यस्यापि
वाच्यत्वेनाङ्गिकारादसतः प्राप्तिः । तथा श्रुतिप्राप्तमेवासन्मतमत्र निषिध्यते । समयस्योपरि निषेधात् ।
अर्थाद्युक्तिविरोधोऽपि निराक्रियते ॥ 08 ॥

ॐ अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ॐ ॥ 09-144 ॥

असत उत्पत्तौ प्रलयेऽपि सर्वासत्त्वमेव स्यात् ॥ 09 ॥

ॐ न तु दृष्टान्तभावात् ॐ ॥ 10-145 ॥

प्रलये सर्वासत्त्वं भावे दृष्टान्तभावादेव न युज्यते । सत उत्पत्तिः, सशेषविनाशश्च हि लोके दृष्टः ॥ 10 ॥

ॐ स्वपक्षदोषाच्च ॐ ॥ 11-146 ॥

दृष्टान्ताभावादेव ॥ 11 ॥

ॐ तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथाऽनुमेयमिति चेदेवमप्यनिर्मोक्षप्रसङ्गः ॐ

॥ 12-147 ॥

एतावानेव तर्क इति प्रतिष्ठापकप्रमाणाभावादुक्तादन्यथाऽप्यनुमेयमिति चेन्न, एवं सति प्रमाणसिद्धेऽपि
मोक्षेऽन्यथाऽनुमेयत्वादनिर्मोक्ष प्रसङ्गः । अतो यावत्प्रमाणसिद्धं तावदेवाङ्गीकर्तव्यम् ।
नातोऽन्यच्छङ्कम् ।

'यावदेव प्रमाणेन सिद्धं तावदहापयन् ।

स्वीकुर्यान्नैव चान्यत्र शङ्कं मानमृते क्वचित्' इति वामने ॥ 12 ॥

ॐ एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः ॐ ॥ 13-148 ॥

एतेन दृष्टान्तभावेनाभावेन चावशिष्टा अप्यपरिग्रहा विरुद्धसिद्धान्ता
अकर्तृकत्वाचेतनकर्तृकत्वजीवकर्तृकत्वादयोऽपि ।

'अकस्माद्दीदमाविरासीदकस्मात् तिष्ठत्यकस्माल्लयमभ्युपैति'

'प्रधानादिदमुत्पन्नं प्रधानमधितिष्ठति ।

प्रधाने लयमभ्येति न ह्यन्यत् कारणं मतम् ॥

‘जीवाद्भवन्ति भूतानि जीवे तिष्ठन्त्यचञ्चलाः ।

जीवे तु लयमृच्छन्ति न जीवात् कारणं परम्’

इत्यादि श्रुतिप्राप्ता निराकृताः । यथा दुःखादिषु जीवस्यास्वातन्त्र्यमेवमन्येष्वपीति दृष्टान्तः ।

श्रुतिगतिस्तु ब्रह्मवाचकत्वेन प्रदर्शिता । यत्रान्यवाचकत्वेऽप्यविरोधस्तत्रान्यदप्यमुख्यतयोच्यते, यत्र विरोधस्तत्र ब्रह्मैवोच्यत इति नियमः ॥ 13 ॥

॥ इति असदधिकरणम् ॥ 04 ॥

ॐ भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत् ॐ ॥ 14-149 ॥

‘कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति’

इति मुक्तजीवस्य परापत्तिरुच्यते । अतस्तयोरविभागः । अतः पूर्वमपि स एव । न ह्यन्यस्यान्यत्वं युज्यत इति चेन्न । स्याल्लोकवत् । यथा लोके उदके उदकान्तरस्यैकीभावव्यवहारेऽप्यन्तर्भेदोऽस्त्येव, एवं स्यादत्रापि । तथा च श्रुतिः

‘यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति’ इति ।

स्कान्दे च –

‘उदकं तूदके सिक्तं मिश्रमेव यथा भवेत् ।

न चैतदेव भवति यतो वृद्धिः प्रदृश्यते ॥

एवमेव हि जीवोऽपि तादात्म्यं परमात्मना ।

प्राप्तोऽपि नासौ भवति स्वातन्त्र्यादिविशेषणात्’ इति ।

‘ब्रह्मेशानादिभिर्देवैर्यत् प्राप्तुं नैव शक्यते ।

तद्यत्स्वभावः कैवल्यं स भवान् केवलो हरे’ इति च ।

‘न ते महित्वमन्वश्रुवन्ति’ न ते विष्णो जायमानो न जातः’ इत्यादि च फलत्वेऽपि युक्तिविरोधेऽन्तर्भावादत्रोक्तम् ॥ 14 ॥

॥ इति भोक्त्राधिकरणम् ॥ 05 ॥

ॐ तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॐ ॥ 15-150 ॥

स्वतन्त्र बहुसाधना सृष्टिलोके दृष्टा । नैवं ब्रह्मणः । स्वरूपसामर्थ्यादेव तस्य सृष्टिः ।

‘किं सिवदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्विक्कथाऽऽसीत्’

इति ह्याक्षेपः । अधिष्ठानाद्यनुक्तेः । आदिशब्दाद्युक्तिभिश्च ।

‘परतन्त्रो ह्यपेक्षेत स्वतन्त्रः किमपेक्ष्यते ।

साधनानां साधनत्वं यतः किं तस्य साधनैः’ इत्यादिभिः ॥ 15 ॥

ॐ भावे चोपलब्देः ॐ ॥ 16-151 ॥

स्वतन्त्रसाधनभावे प्रमाण्यैरुपलभ्येत ।

‘अनुक्तं पञ्चभिर्वैदेर्न वस्त्वस्तिकुतश्चन ।

अतो वेदत्वमेतेषां यतस्ते सर्ववेदकाः’ इति स्कान्दे ॥ 16 ॥

‘अद्ब्यः सम्भूतः पृथिव्यैरसाच्च’ इत्यादिना साधनान्तरप्रतीतेः कथमनुपलब्धिरित्यत आह ।

ॐ सत्वाचावरस्य ॐ ॥ 17-152 ॥

अवरस्य तदधीनस्य साधनस्य सत्त्वात् ।

‘काल आसीत् पुरुष आसीत् परम आसीत् तद्यदासीत् तदावृतमासीत् ततधीनमासीदथ ह्येक एव परम आसीद्यस्यैतदासीन्न ह्येतदासीत्’ इति हि काषायणश्रुतिः ॥ 17 ॥

ॐ असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् ॐ ॥ 18-153 ॥

‘नासदासीन्नो सदासीत्’ इति सर्वस्यासत्त्वव्यपदेशान्नेति चेन्न । अव्यक्तत्वपारतन्त्र्यादिधर्मान्तरेण हि तदुच्यते । ‘तम आसीत्’ इति वाक्यशेषात् । न चान्यत्र प्रमाणमस्ति ।

‘अजे ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः’ ।

‘अनाद्यनन्तं जगदेतदीदृक् प्रवर्तते नात्र विचार्यमस्ति ।

न चान्यथा काऽपि च कस्य चेदमभूत् पुरा नापि तथा भविष्यत् ॥

‘असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्’ ।

‘असत्यमाहुर्जगदेतदज्ञाः शक्तिं हरेर्ये न विदुः परां हि’

‘यः सत्यरूपं जगदेतदीदृक् सृष्ट्वा त्वभूत् सत्यकर्मा महात्मा’ ।

‘अथैनमाहुः सत्यकर्मेति, सत्यं ह्येवेदं विश्वमसौ सृजते ।

अथैनमार्हुनित्यकर्मेति नित्यं ह्येवासौ कुरुते’ ।

‘यच्चिकेत सत्यमित् तन्न मोघम्’ इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यः ।
‘परस्परविरोधे तु वाक्यानां यत्र युक्तता ।
तथैवार्थ परिज्ञेयो नावाक्या युक्तिरिष्यते’ इति बृहत्संहितायाम् ।
‘विरुद्धवत् प्रीतीयन्त आगमा यत्र वै मिथः ।
तत्र दृष्टानुसारेण तेषामर्थोऽन्ववेक्ष्यते’ इति च ।
‘ईशोऽनीशो जगन्मिथ्या न पूज्यो गुरुरित्यपि ।
इत्यादिवद्विरुद्धानि वचनान्यथ युक्तयः ।
प्रमाणैर्बहुभिर्ज्ञेया आभासा इति वैदिकैः ॥
वेदवेदानुसारेषु विरोधेऽन्यार्थकल्पना ।
अन्येषां तु विरुद्धानां विप्रलम्भोऽथवा भ्रमः’ इति भागवत तन्त्रे ।
‘शास्त्रार्थयुक्तोऽनुभवः प्रमाणं तूत्तमं मतम् ।
मध्यमं त्वागमो ज्ञेयः प्रत्यक्षमधमं स्मृतम् ॥
प्रत्यक्षयोरगमयोर्विरोधे निश्चयाय तु ।
अनुमाद्या न स्वतन्त्राः प्रमाणपदवीं ययुः’
इति पुरुषोत्तमतन्त्रे ॥ 18 ॥

ॐ युक्तेः शब्दान्तराच्च ॐ ॥ 19-154 ॥

‘साधनानां साधनत्वं यदात्माधीनमिष्यते ।
तदा साधनसम्पत्तिरैश्वर्यद्योतिका भवेत्’
इत्यादेः साधनान्तरेण सृष्टिर्युक्ता ।
‘अद्भ्यः सम्भूतो हिरण्यगर्भ इत्यष्टौ’ इत्यादिशब्दान्तराच्च ॥ 19 ॥

ॐ पटवच्च ॐ ॥ 20-155 ॥

साधनान्तरेण हि पटादिसृष्टिर्दृष्टा ॥ 20 ॥

ॐ यथा प्राणादिः ॐ ॥ 21-156 ॥

तच्च साधनजातां तेनानुप्रविष्टमेव यथा शरीरेन्द्रियादिः ।

‘प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्य पुरुषोत्तमः ।

क्षोभयामास भगवान् सृष्ट्यर्थं जगतो विभुः’ इति कौर्मै ॥ 21 ॥

॥ इति आरम्भणाधिकरणम् ॥

जीवकर्तृत्वपक्षः श्रुतिप्राप्तो विस्तरान्निराक्रियते ।

ॐ इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॐ ॥ 22-157 ॥

जीवकर्तृत्वपक्षे हिताकरणमहितकरणं च न स्यात् ॥ 22 ॥

ॐ अधिकं तु भेदनिर्देशात् ॐ ॥ 23-158 ॥

न च ब्रह्मणः श्रमचिन्तादिदोषप्राप्तिः । अधिकशक्तित्वात् ।

‘श्रोता मन्ता द्रष्टाऽऽदेष्टाघोष्टा विज्ञाता

प्रज्ञता सर्वेषां भूतानामन्तरपुरुषः’

‘एष त आत्मा सर्वान्तरः’

‘योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति’

इत्यादिविशेषनिर्देशात् ॥ 23 ॥

ॐ अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ॐ ॥ 24-159 ॥

चेतनत्वेऽप्यश्मादिवदस्वतन्त्रत्वात् स्वतः कर्तृत्वानुपपत्तिर्जीवस्य ।

‘यथा धारुमयीं योषां नरः स्थिरसमाहितः ।

इङ्गयत्यङ्गमङ्गानि तथा राजन्निमाः प्रजाः’ इति भारते ॥ 24 ॥

ॐ उपसंहारदर्शान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि ॐ ॥ 25-160 ॥

जीवेन कार्योपसंहारदर्शनात् तस्य कर्तृत्वमिति चेन्न । यथा गोषु क्षीरं दृश्यमानमपि प्राणादेव जायते ,

‘अन्नं रसादिरूपेण प्राणः परिणयत्यसौ’ इति वचनात् ।

एवं जीवे दृश्यमानोऽपि कार्योपसंहारोऽस्वातन्त्र्यात् परकृत एव ।

‘य आत्मानमन्तरो यमयति’ ।

‘नाहं कर्ता न कर्ता त्वं कर्तायस्तु सदा प्रभुः’ इत्यादेः ॥ 25 ॥

ॐ देवादिवदपि लोके ॐ ॥ 26-161 ॥

न च कर्तुरीश्वरस्यादृष्टिविरोधः । देवादिवददृश्यत्वशक्तियोगात् । लोकेऽपि पिशाचादीनां तादृशी शक्तिर्दृष्टा किम्वीश्वरस्य ।

‘न युक्तियोगाद्वाक्यानि निराकार्याण्यपि क्वचित् ।

विरोध एव वाक्यानां युक्तयो न तु युक्तयः’

इति बृहत्संहितायाम् ॥ 26 ॥

ॐ कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॐ ॥ 27-162 ॥

अयं च दोषो जीवकर्तृत्वपक्षे । एकेनाङ्गुलिमात्रेण प्रवर्तमानोऽपि पूर्णप्रवृत्तिः स्यात् । न च तद्युच्यते, सामर्थ्यैकदेशदर्शनात् । न चैकदेशेन, निरवयवत्वात् ।

‘अथ यः स जीवः स नित्यो निरवयवो ज्ञात्वाऽज्ञाता

सुखी दुःखी शरीरेन्द्रियस्थः’ इति भाल्लवेयश्रुतिः ।

न चोपाधिकृतोऽशः स एवांश उपहित इति, द्वित्वापेक्षत्वात् न चान्यत् कल्प्यम् ।

‘यद्धि युक्त्या विरुध्येत तदीशकृतमेव हि’ इति गत्यन्तरोक्तेः ॥ 27 ॥

॥ इति इतरव्यपदेशाधिकरणम् ॥ 07 ॥

ॐ श्रुतेस्तुशब्दमूलत्वात् ॐ ॥ 28-163 ॥

न चेश्वरपक्षेयं विरोधः ।

‘योऽसौ विरुद्धोऽविरुद्धो मनुरमनुरवाग्वाग्निन्द्रोऽनिन्द्रः

प्रवृत्तिरप्रवृत्तिः स परः परमात्मा’ इति पैङ्गादिश्रुतेरेव ।

शब्दमूलत्वाच्च न युक्तिविरोधः ।

‘यद्वाक्योक्तं न तद्युक्तिर्विरोद्धुं शक्नुयात् क्वचित् ।

विरोधे वाक्ययोऽ कापि किञ्चित् साहाय्यकारणम्’ इति पुरुषोत्तमतन्त्रे ॥ 28 ॥

ॐ आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ॐ ॥ 29-164 ॥

परमात्मनो विचित्राश्च शक्तयः सन्ति, नान्येषाम् ।

विचित्र शक्तिः पुरुषः पुराणो न चान्येषां शक्तयस्तादृशाः स्युः ।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा सर्वान् देवानेक एवानुविष्टः' ॥

इति श्वेताश्वतरश्रुतिः ॥ 29 ॥

ॐ स्वपक्षदोषाच्च ॐ ॥ 30-165 ॥

ये दोषा इतरत्रापि ते गुणाः परमे मताः ।

न दोषः परमे कश्चिद्गुणा एव निरन्तराः' ।

इति वचनाज्जीवपक्ष एव दोषो न परपक्षे ।

'अथ यः सदोषः साञ्जनः सजनिः स जीवोऽथ

यः स निर्दोषो निष्कलः सगुणः परः परमात्मा'

इति काषायणश्रुतिः ॥ 30 ॥

ॐ सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ॐ ॥ 31-166 ॥

'सर्वैर्युक्ताशक्तिभिर्देवता सा परेति यां प्राहुरजस्रशक्तिम् ।

नित्यानन्दा नित्यरूपाऽजरा च या शाश्वताऽत्मेति च यां वदन्ति'

इति चतुर्वेदशिखायाम् ॥

अतो न केवलं विचित्रशक्तिः, किन्तु सर्वशक्तिरेव ॥ 31 ॥

ॐ विकरणत्वान्नेति चेत् तदुक्तम् ॐ ॥ 32-167 ॥

न च करणाभावादनुपपत्तिरिति युक्तम् ।

'आपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रुणोत्यकर्णः ।

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्तातमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्' ।

'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।

पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'

इत्यादि श्रुतिभ्यः

'सर्वोपेता च' इति सामान्यपरिहारेऽपि विशेषयुक्त्यर्थं पुनराशङ्का ॥ 32 ॥

॥ इति शब्दमूलत्वाधिकरणं ॥ 08 ॥

यत्प्रयोजनार्थं सृष्ट्यादिस्तदूनत्वादपूर्णतेत्यत आह –

ॐ न प्रयोजनवत्त्वात् ॐ ॥ 33-168 ॥

‘अथैष एव परम आनन्दः’ इत्यादिना कृतकृत्यत्वान्न प्रयोजनाय सृष्टिः किन्तु ॥

ॐ लोकवत्तुलीलाकैवल्यम् ॐ ॥ 34-169 ॥

यथा लोके मत्तस्य सुखोद्रेकादेव नृत्तगानादिलीला न तु प्रयोजनापेक्षया, एवमेवेश्वरस्य ।
नारायणसंहितायां च-

‘सृष्ट्यादिकं हरिर्नैव प्रयोजनपेक्ष्य तु ।

कुरुते केवलानन्दाद्यथा मत्तस्य नर्तनम् ॥

पूर्णानन्दस्य तस्येह प्रयोजनमतिः कुतः ।

मुक्ता अप्याप्तकामाः स्युः किमु तस्याखिलात्मनः’ इति ॥

‘देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा’ इति च श्रुतिः ॥ 34 ॥

॥ इति नप्रयोजनाधिकरणम् ॥ 09 ॥

सर्वकर्तृत्वे वैषम्यनैर्घृण्ये तस्येत्यतो वक्ति-

ॐ वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति ॐ ॥ 35-170 ॥

कर्मापेक्षया फलदातृत्वान्न तस्य वैषम्यनैर्घृण्ये ।

‘पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापम्’ इति श्रुतिः ॥ 35 ॥

ॐ न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॐ ॥ 36-171 ॥

यदपेक्षयाऽसौ फलं ददाति न तत् कर्म ।

‘एष ह्येवैनं साधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत एष उ एवासाधुकर्म कारयति तं यमघो
निनीषते’

इति श्रुतेः कर्मणोऽपि तन्निमित्तत्वादिति चेन्न । तस्यापि पूर्वकर्म कारणमित्यनादित्वात् कर्मणः ।

भविष्यत्पुराणे च –

‘पुण्यपापादिकं विष्णुः कारयेत् पूर्वकर्मणा ।

अनादित्वात् कर्मणश्च न विरोधः कथञ्चन’ इति ॥ 36 ॥

ॐ उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॐ ॥ 37-172 ॥

न च कर्मापेक्षत्वेनेश्वरस्यास्वातन्त्र्यम् ।

‘द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।

यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया’ ॥

इत्यादिना कर्मादीनां सत्त्वस्यापि तदधीनत्वात् । न च पुनर्वैषम्याध्यापेते न दोषः ।

तादृशवैषम्यादेरुपलभ्यमानत्वात् ।

‘स कारयेत् पुण्यमथापि पापं न तावता दोषवानीशिताऽपि ।

ईशो यत्रो गुणदोषादिसत्त्वे स्वयं परोऽनादिरादिः प्रजानाम्’

इति चतुर्वेदशिखायाम् ॥ 37 ॥

॥ इति वैषम्यनैर्घृण्याधिकरणम् ॥ 10 ॥

अवशिष्टैरुपसंहरति-

ॐ सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॐ ॥ 38-173 ॥

‘गुणाः श्रुताः सुविरुद्धाश्च देवे सन्त्यश्रुता अपि नैवात्र शङ्का ।

चिन्त्या अचिन्त्याश्च तथैव दोषाः श्रुताश्च नाज्ञैर्हि तथा प्रतीताः ।’

इति सर्वगुणोपपत्तिश्रुतेश्च ॥ 38 ॥

॥ इति सर्वधर्मोपपत्त्यधिकरणम् ॥ 11 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्य विरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

02-02 ॥

द्वितीय पादः ॥ 02-02 ॥

‘इतरेषां चानुपलब्धेः’ इति सामान्यतो निराकरणं समयानां कृतम् । विशेषतो निराकरोत्यस्मिन् पादे ।

अचेतनप्रवृत्तिमतं प्रथमतो निराकरोति –

ॐ रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ॐ ॥ 01-174 ॥

अचेतनस्य स्वतः प्रवृत्त्यनुपपत्तेर्नानुमानपरिकल्पितं प्रधानं जगत्कर्तृ । चशब्देन प्रमाणाभावं दर्शयति ॥ 01 ॥

ॐ प्रवृत्तेश्च ॐ ॥ 02-175 ॥

चेतनस्य स्वतः प्रवृत्तिदर्शनाच्च ॥ 02 ॥

ॐ पयोऽम्बुवच्चेत् तत्रापि ॐ ॥ 03-176 ॥

पयोऽम्बुवदचेतनस्यापि प्रवृत्तिर्युज्यत इति न युक्तम् ।

‘एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते ,

याश्चश्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां य दिशमनु’

‘एतेन ह वाव पयो मण्डं भवति’

इत्यादिना तत्रापीश्वरनिमित्तप्रवृत्तिश्रुतेः ॥ 03 ॥

ॐ व्यतिरेकानवस्थितेश्वानपेक्षत्वात् ॐ ॥ 04-177 ॥

‘न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे’ इति तद्व्यतिरेकेण कस्यापि

कर्मणोऽनवस्थितेरनपेक्षितमेवाचेतनवादिमतम् ॥ 04 ॥

॥ इति रचनानुपपत्त्यधिकरणम् ॥ 01 ॥

शेश्वरसाङ्ख्यमतं निराकरोति । यथा पृथिव्या एव पर्जन्यानुगृहीतं तृणादिकमुत्पद्यते, एवं

प्रधानादीश्वरानुगृहीतं जगदित्यतो ब्रवीति-

ॐ अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॐ ॥ 05-178 ॥

‘यच्च किञ्चित् जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।

अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः’

‘ब्रह्मण्येवेदमाविरासीद्ब्रह्मणि स्थितं ब्रह्मण्येव लयमभ्येति ।

ब्रह्मैवाधस्ताद्ब्रह्मैवोपरिष्ठाद्ब्रह्म मध्यतो ब्रह्म सर्वतः’ ॥

‘ब्रह्मैवेदं सर्वम्’

इत्यादिश्रुतिभ्योऽन्यत्र जगतोऽभावात् तृणादीनां पर्जन्यवन्नानुग्राहकत्वमात्रमीश्वरस्य ।

‘स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।

अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्तिकृत्
इति भागवते ।
'द्रव्यं कर्म च' इत्यादि च । चशब्देन प्रकृतिसत्तादिप्रदत्वं चाङ्गीकृतम् ॥ 5 ॥
॥ इति अन्यत्रभावाधिकरणम् ॥ 02 ॥
लोकायतिकपक्षं निराकरोति
ॐ अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ॐ ॥ 06-179 ॥
यस्य धर्माधर्मौ न स्तः तत्सिद्धान्ते किं प्रयोजनम् । अतः स्वव्याहतेरेवोपेक्ष्यः ॥ 06 ॥
॥ इति अभ्युपगमाधिकरणम् ॥ 02 ॥
पुरुषोपसर्जनप्रकृतिकर्तृवादमपाकरोति -
ॐ पुरुषाश्मवदिति चेत् तथाऽपि ॐ ॥ 07-180 ॥
यथा चेतनसम्बन्धादचेतनमेव शरीरमश्मादिकमादाय गच्छति, एवमचेतनाऽपि प्रकृतिः पुरुषसम्बन्धात् प्रवर्तत इति चेन्न । 'न ऋते त्वत्क्रियते' इति तत्रापि तथात्वे दृष्टान्ताभावात् ॥ 07 ॥
ॐ अङ्गीत्वानुपपत्तेः ॐ ॥ 08-181 ॥
शरीरप्रवृत्तौपुरुषस्याङ्गित्वात् ।
'अङ्गमङ्गी समादाय यथाकार्यं करोत्यसौ' इत्यङ्गित्वव्यवहारोऽनुपपन्न ॥ 08 ॥
॥ इति पुरुषाश्माधिकरणम् ॥ 04 ॥
प्रकृत्युपसर्जनपुरुषकर्तृवादमपाकरोति -
ॐ अन्यथाऽनुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ॐ ॥ 09-182 ॥
शरीरसम्बन्धात् पुरुषः प्रवर्तत इत्यङ्गीकारेऽपि स्वतस्तस्यासामर्थ्याच्चरीरसम्बन्ध एवायुक्तः ॥ 09 ॥
ॐ विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ॐ ॥ 10-183 ॥
सकलश्रुतिस्मृतियुक्तिविरुद्धत्वाच्चानीश्वरमतमसमञ्जसम् ।
'श्रुतयः स्मृतयश्चैव युक्तयश्चेश्वरं परम् । वदन्ति तद्विरुद्धं यो वदेत् तस्मान्न चाधमः' इति पाद्रे ॥ 10 ॥

॥ इति अन्यथानुमित्यधिकरणम् ॥ 05 ॥

परमाण्वारम्भवादमपाकरोति –

ॐ महदीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॐ ॥ 11-184 ॥

महत्त्वादीर्घत्वाच्च यथा कार्यमुत्पद्यते, एवं ह्रस्वत्वाद् पारिमण्डल्याच्चोत्पद्येत । वाशब्दादन्यथैतयोरपि न स्यात्, विशेषकारणाभावात् ॥ 11 ॥

ॐ उभयथाऽपि न कर्मातस्तदभावः ॐ ॥ 12-185 ॥

ईश्वरेच्छाया नित्यत्वे तद्भावेऽपि परमाणुकर्माभावान्नेदानीमपि स्यात् । अनित्यत्वे तत्कारणाभावात् । अतः परमाणुचेष्टाभावात् तत्कार्याभावः । वैदिकेश्वरस्य तु वेदेनैव सर्वशक्तित्वोक्तेः सर्वमुपपद्यते । स्वत एव काले विशेषाङ्गीकृतेश्च ॥ 12 ॥

ॐ समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॐ ॥ 13-186 ॥

कार्यकारणादीनां समवायसम्बन्दाङ्गीकारात् तस्य च भिन्नत्वसाम्यात् समवायान्तरापेक्षायामनवस्थितिः । न च तत्प्रमाणम् । प्रथमसम्बन्धा सिद्धैव च तदसिद्धिः । स्वनिर्वाहकत्वे समवाय एव न स्यात् ॥ 13 ॥

ॐ नित्यमेव च भावात् ॐ ॥ 14-187 ॥

नित्यत्वाच्च परमाणूनां समवायस्य च तस्यैव जनित्वाङ्गीकारान्नित्यमेव कार्यं स्यात् । अन्यथा न कदाचित् ॥ 14 ॥

ॐ रूपादिमत्त्वाच्चविपर्ययो दर्शनात् ॐ ॥ 15-188 ॥

रूपादिमत्त्वाच्च परमाणूनामनित्यत्वम् । तथा दृष्टत्वाल्लोके ॥ 15 ॥

ॐ उभयथा च दोषात् ॐ ॥ 19-189 ॥

नित्यत्वे परमाणूनां तद्वत् सर्वनित्यत्वं स्यात् । विशेषप्रमाणाभावात् अनित्यत्वे कारणाभावात् तदुत्पत्त्यभावः ॥ 16 ॥

ॐ अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ॐ ॥ 17-190 ॥

सकलश्रुतिस्मृत्यपरिगृहीतत्वाच्चातिशयेनानपेक्षता ।

‘आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थकम्’ इति मोक्षधर्मे ॥ 17 ॥

॥ इति वैशेषिकाधिकरणम् ॥ 06 ॥

परमाणुपुञ्जवादिमतं निराकरोति-

ॐ समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ॐ ॥ 18-191 ॥

समुदायस्यैकहेतुकत्वं न युज्यते । उभयहेतुकेऽप्यन्योऽन्याश्रयात् तदप्राप्तिः । अन्यथा सर्वदा समुदायसत्त्वं स्यात् ॥ 18 ॥

ॐ इतरेतरप्रत्ययात्वादिति चेन्न उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ॐ ॥ 19-192 ॥

सर्वदा विद्यमानोऽपि समुदाय परस्परापेक्षया व्यवहियत इति चेन्न । एकं कार्यमुत्पाद्य तस्य विनष्टत्वात् परस्परप्रत्ययस्तदपेक्षया व्यवहार इति न युज्यते । कारणे सति कार्यं भवत्येवेति हि तस्य नियमः ॥ 19 ॥

ॐ उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ॐ ॥ 20-193 ॥

कार्योत्पत्तावेव कारणस्य विनाशाच्च न विशेषकार्योत्पत्तिः ॥ 20 ॥

ॐ असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा ॐ ॥ 21-194 ॥

कारणे विनष्टे कार्यमुत्पद्यते चेत् तत्कार्यमिति प्रतिज्ञाहानिः । तत्काले कारणमस्ति चेद्विनाशकारणाभावद्यौगपद्यं सर्वकार्याणाम् ॥ 21 ॥

ॐ प्रतिसङ्घाऽप्रतिसङ्घानिरोधप्राप्तिरविच्छेदात् ॐ ॥ 22 -195 ॥

कारणे सति कार्यं भवत्येवेति नियमान्निस्संतानः ससन्तानश्च विनाशो न युज्यते ॥ 22 ॥

ॐ उभयथा च दोषात् ॐ ॥ 23-196 ॥

कारणे सति कार्यं भवत्येवेति नियमे सर्वदा कार्यभावान्न कार्यकारणविशेषः । अनियमे कार्यानुत्पत्तिः ॥ 23 ॥

ॐ आकाशे चाविशेषात् ॐ ॥ 24-197 ॥

दीपादिषु विशेषदर्शनात् क्षणिकत्वेनान्यत्रापि क्षणिकत्वमनुमीयते
चेदाकाशादिष्वविशेषदर्शनादन्यत्रापि तदनुमीयते ॥ 24 ॥

ॐ अनुस्मृतेश्च ॐ ॥ 25-198 ॥

तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञानाच्च । प्रत्यभिज्ञाय ब्रान्तित्वे विशेषदर्शनस्यापि ब्रान्तित्वम् ॥ 25 ॥

॥ इति समुदायाधिकरणम् ॥ 07 ॥

शून्यवादमपाकरोति-

ॐ नासतोऽदृष्टत्वात् ॐ ॥ 26-199 ॥

अदृष्टत्वादसतः कारणत्वं न युज्यते ॥ 26 ॥

ॐ उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ॐ ॥ 27-200 ॥

असतः कारणत्वे उदासीनानां हेयोपादेयबुद्धिवर्जितानां खपुष्पादीनामपि सकाशात् कार्यसिद्धिः ।
चशब्दान्न चेदन्यत्रापि न स्यादविशेषात् ॥ 27 ॥

ॐ नाभाव उपलब्धेः ॐ ॥ 28-201 ॥

न च जगदेव शून्यमिति वाच्यम् । दृष्टत्वात् ॥ 28 ॥

ॐ वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॐ ॥ 29-202 ॥

न च दृष्टस्यापि स्वप्नादिवदभावः । तस्योत्तरकाले 'स्वप्नोयं', 'नायं सर्पः' इत्याद्यनुभवात् । न चात्र
तादृशं प्रमाणमस्ति ॥ 29 ॥

॥ इति असदधिकरणम् ॥ 08 ॥

विज्ञानवादमपाकरोति-

ॐ न भावोऽनुपलब्धेः ॐ ॥ 30-203 ॥

न विज्ञानमात्रं जगत् । तथाऽनुभवाभावात् ॥ 30 ॥

ॐ क्षणिकत्वाच्च ॐ ॥ 31-204 ॥

ज्ञानं क्षणिकम् । अर्थानां च स्थायित्वमुक्तम् । आतश्च नैक्यम् ॥ 31 ॥

ॐ सर्वथाऽनुपपत्तेश्च ॐ ॥ 32-205 ॥

प्रमाणाभावात् सर्वश्रुतिस्मृतिर्युक्तिविरुद्धत्वाच्च नैते पक्षा ग्राह्याः ॥ 32 ॥

॥ इति अनुपलब्धधिकरणम् ॥ 09 ॥

स्याद्वादिमतं दूषयति-

ॐ नैकस्मिन्नसम्भवात् ॐ ॥ 33-206 ॥

सत् स्यादसत् स्यात् सदसत् स्यात् ततोऽन्यच्च स्यादित्येतन्नैकस्मिन् युज्यते । अदृष्टत्वेनासम्भवात्
॥ 33 ॥

ॐ एवंचात्माकात्स्न्यम् ॐ ॥ 34-207 ॥

जीवस्य शरीरपरिमितत्वाङ्गीकारेऽण्वादिशरीरस्थस्य हस्तादिशरीरेऽकात्स्न्यं स्यात् ॥ 34 ॥

ॐ न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ॥ 35-208 ॥

तत्तच्छरीरस्थस्य तत्तत्परिमाणत्वमिति न मन्तव्यम् । विकारित्वादनित्यत्वप्रसक्तेः ॥ 35 ॥

ॐ अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषात् ॐ ॥ 36-209 ॥

परिमाणाभावे स्वरूपाभावप्राप्त्याऽन्त्यपरिमाणस्थितेस्तदर्थत्वेन शरीरस्थितेरुभयनित्यत्वादविशेषेण
सर्वशरीरनित्यत्वं स्यात् ॥ 36 ॥

॥ इति नैकस्मिन्नधिकरणम् (स्याद्वाद्यधिकरणम्) ॥ 10 ॥

पाशुपतपक्षमपाकरोति-

ॐ पत्युरसामञ्जस्यात् ॐ ॥ 37-210 ॥

‘यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्’

‘अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ’ ।

‘अस्य देवस्य मीळुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।

विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्’ ।

‘एको नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानो नाग्नीषोमौ’

इत्यादि श्रुतेः पारतन्त्र्येणासमञ्जसत्वान्न पशुपतीरीश्वरो जगत्कर्ता ॥ 37 ॥

ॐ सम्बन्धानुपपत्तेश्च ॐ ॥ 38-211 ॥

अशरीरत्वात् तस्य जगता सम्बन्धो न युज्यते कर्तृत्वेन मृतपुरुषवत् ॥ 38 ॥

ॐ अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ॐ ॥ 39-212 ॥

पृथिव्याद्यधिष्ठाने स्थितो हि कुलालादिः कार्यं करोति । न चास्य तदस्ति ॥ 39 ॥

ॐ करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॐ ॥ 40-213 ॥

इदमेव जगत् तस्य करणवदधिष्ठानादिरूपम् । नित्यस्यापि कस्यचिद्भावाद्युज्यत इति चेन्न भोगादिप्राप्तेः । उत्पत्तिविनाशौ सुखदुःखभोगाश्च प्राप्यन्ते तद्गताः ॥ 40 ॥

ॐ अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॐ ॥ 41-214 ॥

देहवत्त्वेऽन्तवत्त्वम् । अन्यथा ज्ञानाभावः । शरीरेण एव हि ज्ञानोत्पत्तिर्दृष्टा । विष्णोस्तु श्रुत्यैव सर्वे विरोधाः परिहृताः ।

‘यदात्मको भगवांस्तदात्मिका व्यक्तिः ।

किमात्मको भगवान् ज्ञानात्मक ऐश्वर्यात्मकः शक्त्यात्मकः’ इति ।

‘बुद्धिमनोऽङ्गप्रत्यङ्गवत्तां भगवतो लक्षयामहे ।

बुद्धिमान् मनोवानङ्गप्रत्यङ्गवान्’ इति

‘सद्देहः सुखगन्धश्च ज्ञानभाः सत्पराक्रमः ।

ज्ञानज्ञानः सुखसुखः स विष्णुः परमाक्षरः’ ॥ इत्यादिकया ॥ 41 ॥

॥ इति पत्युरधिकरणम् (पशुपत्यधिकरणम्) ॥ 11 ॥

शक्तिपक्षं दूषयति-

ॐ उत्पत्त्यसम्भवात् ॐ ॥ 42-215 ॥

न हि पुरुषाननुगृहीतस्त्रीभ्य उत्पत्तिर्दृश्यते ॥ 42 ॥

ॐ न च कर्तुः करणम् ॐ ॥ 43-216 ॥

यदि पुरुषोऽङ्गीक्रियेत तस्यापि करणाभावादनपत्तिः ॥ 43 ॥

ॐ विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ॐ ॥ 44-217 ॥

यदि विज्ञानादिकरणं तस्याङ्गीक्रियते तदा तत एव सुष्ट्याद्युपपत्तेरीश्वरवादान्तर्भावः ॥ 44 ॥

ॐ विप्रतिषेधाच्च ॐ ॥ 45-218 ॥

सकलश्रुत्यादिविरुद्धत्वाच्चासमञ्जसम् ॥ 45 ॥

॥ इति उत्पत्त्य(शक्त्य)धिकरणम् ॥ 12 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्र भाष्ये द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

02-02 ॥

तृतीयः पादः ॥ 02-03 ॥

जीवपरमात्माधिभूताधिदैवेषु श्रुतीनां परस्परं विरोधमपाकरोत्यनेन पादेन।

ॐ न वियदश्रुतेः ॥ 01-219 ॥

न वियदनुत्पत्तिमत् । तथाऽश्रुतेः ॥ 01 ॥

ॐ अस्तितु ॐ ॥ 02-220 ॥

अस्त्येव चोत्पत्तिश्रुतिः-

‘आत्मन आकाशः सम्भूतः’ इत्यादि ॥ 02 ॥

ॐ गौण्यसम्भवात् ॐ ॥ 03-221 ॥

‘अनादिर्वा अयमाकाशः शून्योऽलौकिकः’ इत्यादिश्रुतिर्गौणी ।

अन्यथोत्पत्तिश्रुतिबाहुल्यासम्भवात् ॥ 03 ॥

ॐ शब्दाच्च ॐ ॥ 04-222 ॥

‘अथ ह वाव नित्यानि पुरुषः प्रकृतिरात्मा काल इति । अथ यान्यनित्यानि प्राणः श्रद्धाभूतानि भौतिकानीति । यानि ह वा उत्पत्तिमन्ति तान्यनित्यानि। यानि ह वा अनुत्पत्तिमन्ति तानि नित्यानि ।

न ह्येतानि कदाचनोत्पद्यन्ते न विलीयन्ते पुरुषः प्रकृतिरात्मा काल इति । अथैतान्युत्पत्तिमन्ति चानुत्पत्तिमन्ति च प्राणः श्रद्धाऽऽकाश इति भागशो ह्युत्पद्यन्ते’ इति भाल्लवेयश्रुतेश्च ॥ 04 ॥

ॐ स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ॐ ॥ 05-223 ॥

स्यादेवैकस्योत्पत्तिमत्त्वमनुत्पत्तिमत्त्वं च गौणमुख्यत्वापेक्षया । यथा ब्रह्मशब्दः ।

‘अथ कस्मादुच्यते परं ब्रह्म बृहति बृंहयति च’

इति श्रुतेः परे ब्रह्मणि मुख्योऽपि गौणत्वेन विरिञ्चादिष्वपि वर्तते । अत एवाब्रह्मत्वं च तेषाम् ।

एवमत्राप्यनुत्पत्तिमच्छब्दः ॥ 05 ॥

ॐ प्रतिज्ञाहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ॐ ॥ 06-224 ॥

ब्रह्मणोऽन्यस्य नित्यत्वे ‘इदं सर्वमसृजत’ इत्यादि प्रतिज्ञाहानिः । आकाशस्यापि सर्वस्मादव्यतिरेकात् ।

‘अत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्’

‘सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्’

‘इदं वा अग्रे नैव किञ्चनासीत्’ इत्यादिश्रुतिभ्यः ॥ 06 ॥

ॐ यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् ॐ ॥ 07-225 ॥

विभक्तत्वाच्च विकारित्वं युक्तम् । विकारिण एव हि विभक्तालोके दृश्यन्ते ।

‘एकोऽविभक्तः परमः पुरुषो विष्णुरुच्यते ।

प्रकृतिः पुरुषः कालस्त्रय एते विभागतः ॥

चतुर्थस्तु महान् प्रोक्तः पञ्चमाऽहङ्कृतिर्मता ।

तद्विभागेन जायन्त आकाशाद्याः पृथक् पृथक् ॥

यो विभागी विकारः सः सोऽविकारः परो हरिः ।

अविभागात् परानन्दो नित्यो नित्यगुणात्मकः ।

विभागो ह्यल्पशक्तिः स्यान्न तदस्ति जनार्दने’ इति बृहत्संहितायाम् ॥ 07 ॥

॥ इति वियदधिकरणम् ॥ 01 ॥

‘अथ ह नित्याश्चानित्याश्च तेजोऽब्रह्मन्याकाश इति तान्यनित्यानि वायुर्वाव नित्यो वायुना हि सर्वाणि भूतानि नेनीयन्ते’

‘अथ ह चेतनाश्चाचेतनाश्च तेजोऽब्रह्मन्याकाश इति तान्यचेतनानि वायुर्वाव चेतनो वायुना हि सर्वाणि भूतानि विज्ञायन्ते’ ।

‘कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।

<p>ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण । 'सा वा एषा देवताऽनादिर्योऽयं पवते' इति । 'यस्यानादिर्न मध्यं नान्तो नोदयो न निम्नोचः' ।</p>
<p>इत्यादिश्रुतिभ्यो वायोरनुत्पत्तिरित्यतो ब्रवीति –</p>
<p>ॐ एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ॐ ॥ 08-226 ॥</p>
<p>एतेन मुख्यामुख्यानुत्पत्तिवचनेन विभक्तत्वाच्च वाय्वनुत्पत्तिश्रुतिरपि व्याख्याता । 'नित्यः परमनित्यश्च तथाऽनित्यः परस्तथा । चतुर्धैतज्जगत् सर्वं परानित्यं तु पार्थिवम् । अनित्यानि तु भूतानि नित्यो वायुरुदाहृतः । परस्तु नित्यः पुरुषः प्रकृतिः काल एव च । एतच्चतुष्टयं विष्णुः स्वयं नित्यः परात्परः । प्रतिव्यूह्य व्यूह्य चासावतीत्या च जनार्दनः । धारयत्यनिशं देवो नित्यानन्दैकलक्षणः' इति कौर्मै ॥ 08 ॥</p>
<p>॥ इति मातरिश्वाधिकरणम् ॥ 02 ॥</p>
<p>ॐ असम्भवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ॐ ॥ 09-227 ॥</p>
<p>'असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत' असतः सदजायत' । इत्यादि श्रुतिभ्यः सतोऽप्युत्पत्तिरिति चेन्न । अनुत्पत्तिरेव सतः । तुशब्देनोक्तव्यवस्थामपाकरोति । न ह्यसतः सदुत्पद्यते । अदृष्टत्वादानुपपत्तेः । 'तद्वा एतद्ब्रह्माहुर्बृहति बृंहयति चेति । तद्वा एतदसदाहुः न ह्यासादयति कश्चन । तद्वा एतत् परमाहुः परतो हि तदुदीक्ष्यते' इति श्रुतेरसच्छब्दो ब्रह्मवाची । 'देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायतेति ब्रह्मवा असत् सद्वाव प्राणः प्राणं वाव महान् सह ओजो</p>

बलमित्याचक्षते'

इति च पैङ्गीश्रुतिः ।

'त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोर्नौ रेतस्त्वजायां कविरादधेऽजः ।

ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थं बभूविमात्मन् करवाम किं ते'

इति भागवते ॥

'अजायमानो बहुधा विजायत' इति च ।

'प्रत्यक्षत्वं हरेर्जन्म न विकारः कथञ्चन ।

पुरुषः प्रकृतिः कालो महानित्यादिषु क्रमात् ॥

विकार एव जननं पुरुषे तद्विशेषणम् ।

परतन्त्रिविशेषो हि विकार इति कीर्तितः' इति पाद्रे ॥

'अविकारोऽपि भगवान् सर्वशक्तित्वहेतुतः ।

विकारहेतुकं सर्वं कुरुते निर्विकारवान् ॥

शक्तिशक्तिमतोश्चापि न विभागः कथञ्चन ।

अविभिन्नाऽपि सेच्छादिभेदैरपि विभाष्यते' इति भागवततन्त्रे ॥ 09 ॥

इति असम्भवाधिकरणम् ॥ 03 ॥

ॐ तेजोऽतस्तथा ह्याह ॐ ॥ 10-228 ॥

'वायोरग्निः' इत्यादेर्नान्यत उत्पत्तिर्ग्राह्या । अत एव परात् तदपि जायते ।

'तत् तेजोऽसृदजत' इति ह्याह । कारणत्वेनेत्युक्तेऽप्यमुख्यतयाऽन्येषामपि शब्दोक्तत्वात्

पुनरुक्तिरुभयकारणत्वनिवृत्त्यर्थम् ॥ 10 ॥

॥ इति तेजोऽधिकरणम् ॥ 04 ॥

ॐ आपः ॐ ॥ 11-229 ॥

'ब्रह्मैवेदमग्र आसीत् तदपोऽसृजत तदिदं सर्वम्' इति श्रुतेः, 'अग्नेरापः' इत्युक्तेऽपि ब्रह्मण

एवाबादिसृष्टिः ।

'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।



खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी' इत्यादि च ।
'कर्ता सर्वस्य वै विष्णुः एक एव न संशयः ।
इतरेषां तु सत्ताद्या यत एव तदाज्ञया' इति भविष्यपुराणे ॥

वामने च-

'तत्र तत्र स्थितो विष्णुस्तत्तच्छक्तीः प्रबोधयन् ।
एक एव महाशक्तिः कुरुते सर्वमञ्जसा' इति ॥
घर्मात् स्वेदादिदृष्टेः पुनः प्रतिषेधः ॥ 11 ॥

॥ इति अबधिकरणम् ॥ 05 ॥

'ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्यामः प्रजायेमेहीति । ता अन्नमसृजन्त' इत्यद्बुद्धोऽन्नसृष्टिः श्रूयते ।
'अद्बुद्धः पृथिवी' इति कुत्रचित् पृथिवीसृष्टिः । अतो विरुद्धत्वादप्रामाण्यमित्यतो वक्तिः -

ॐ पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरादिभ्यः ॐ ॥ 12-230 ॥

पृथिवी तत्रान्नशब्देनोच्यते । भूताधिकारत्वात् । काष्ण्यप्रचुरा च पृथिवी । नान्नस्य तथा विशेषः ।
'आपश्च पृथिवी चान्नम्' । 'पृथिवी वा अन्नम्' । 'ता आपोऽन्नमसृजन्त पृथिवी वा अन्नम्'
इत्यादिशब्दान्तराच्च । आदिशब्दाद्युक्तिः अपौरुषेयत्वेनादोषस्य वाक्यस्य नाप्रामाण्यमित्यादि । कौर्मै
च -

'विरोधो वाक्ययोर्यत्र नाप्रामाण्यं तदेष्यते ।
यथा विरुद्धता न स्यात् तथाऽर्थः कल्प्य एतयोः' इति ।
रक्तोऽग्निरुदकं शुक्लं कृष्णौव पृथिवी स्वतः ।
नाभिपद्माभिसम्बन्धात् पीता सेत्यभिधीयते ।
क्षत्ररक्ताभिसम्बन्धाद्रक्तोदकबहुत्वतः ।
शुक्लत्वेमेत्येवमेव वर्णान्तरगतिर्भवेत् ॥
विष्णुवीर्याभियोगाच्च पीतत्वं भुव इष्यते ।
स्वर्णवीर्यो हि भगवाननादिः पुरुषोत्तमः ॥

इति व्योमसंहितायाम् ॥ 12 ॥

॥ इति पृथिव्यधिकरणम् ॥



‘प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकस्तेनान्नेनाप्यायस्व’ इत्यादिनाऽन्यः संहर्ता प्रतीयत इत्यतो
ब्रूते –

ॐ तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः ॐ ॥ 13-231 ॥

‘तस्याभिध्यानाद्योजनात् तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः’

इति बन्धलयस्य तदभिध्याननिमित्तत्त्वलिङ्गात् तत्कर्तृत्वं प्रतीयते, किमु सादेर्जगतः । इत्येतस्मादेव
संहारकर्ता विष्णुरिति प्रतीयते, किमु

‘यमप्येते भुवनं साम्पराये

स नो हरिर्घृत मीहायुषेऽत्तु देवः’ ।

‘य इदं सर्वं विलापयति स हरिः परः परात्मा’

इत्यादि श्रुतिभ्यः इति एव शब्दः ।

‘स्रष्टा पाता च संहर्ता स एको हरिरीश्वरः ।

स्रष्टृत्वादिकमन्येषां दारुयोषावदुच्यते ॥

एकदेशक्रिया चात्र न तु सर्वात्मनेरितम् ।

सृष्ट्यादिकं समस्तं तु विष्णोरेव पराद्भवेत् इति च स्कान्दे ॥

‘निमित्तमात्रमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ।

हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालाख्यारूपिणस्तव’ इति भागवते ॥

‘स ब्रह्मणा विसृजति स रुद्रेण विलापयति सोऽनुत्पत्तिरलय एक एव हरिः परः परानन्दः’ इति च
महोपनिषदि ॥ 13 ॥

॥ इति तदभिध्यानाधिकरणम् ॥ 07 ॥

‘अत एव हीदं परात् क्रमादुत्पद्यते क्रमाद्विलीयते नासावुदेति नास्तमेति’ इति भाल्लवेयश्रुतौ
क्रमाल्लयः प्रतीयते ।

‘अक्षरात् परमादेव सर्वमुत्पद्यते क्रमात् ।

व्युत्क्रमाद्विलयश्चैव तस्मिन्नेव परात्मनि’ ॥

इति चतुर्वेदशिखायां व्युत्क्रमाल्लयः प्रतीयते । अत आह

ॐ विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च ॐ ॥ 14-232 ॥

क्रमवचनमपि विपरीतक्रमापेक्षया ।

‘कर्ता प्राणादिकस्यास्य हन्ता भूम्यादिकस्य च ।

यः क्रमाद् व्युत्क्रमाच्चैव स हरिः पर उच्यते’ ॥

इत्यत एव भाल्लवेयश्रुतिवचनात् ।

‘अनुरूपः क्रमः सृष्टौ प्रतिरूपो लये क्रमः ।

इति क्रमेण भगवान् सृष्टिसंहारकृद्भरिः’ इति च पादो ।

पूर्वेषां पूर्वेषां सामर्थ्याधिक्यादुपपद्यते च । वामने च –

‘पूर्वे पूर्वे यतो विष्णोः सन्निधानं क्रमाधिकम् ।

सामर्थ्याधिक्यमेतेषां पश्चादेव लयस्तथा ।

व्याप्तिश्चाभ्यधिका तेषामत एव न संशयः’ ॥ इति ॥ 14 ॥

॥ इति विपर्ययाधिकरणम् ॥

ॐ अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ॐ ॥ 15-233 ॥

‘प्राणान्मनो मनसश्च विज्ञानम्’ ।

‘यच्छेद्वाङ्मनसि प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ञान आत्मनि’

इति लिङ्गाद्विज्ञानमनसी अन्तरा विपरीतक्रम इति चेन्न, विशेषप्रमाणाभावात् ॥ 15 ॥

ॐ चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात् तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ॐ

॥ 16-234 ॥

‘मनसश्च विज्ञानम्’ इति व्यपदेशश्चराचरेष्वालोचनाद्विज्ञानं भवतीति भागापेक्षया स्यात् । न विज्ञानतत्त्वापेक्षया । स्कान्दे च –

‘परादव्यक्तमुत्पन्नमव्यक्तात् तु महांस्तथा ।

विज्ञानतत्त्वं महतः समुत्पन्नं चतुर्मुखात् ॥

विज्ञानतत्त्वात् तु मनो मनस्तत्त्वाच्च खादिकम् ।

एवं बाह्या परा सृष्टिरन्तस्तद्व्यक्त्यपेक्षया ।

विपरीतक्रमो ज्ञेयो यस्मादन्ते हरेर्दृशिः' ॥ इति ॥ 16 ॥

॥ इति अन्तराधिकरणम् ॥ 09 ॥

ॐ नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ॐ ॥ 17-235 ॥

'स इदं सर्वं विलाप्यान्तस्तमसि निलीनस्तद्विलाप्य व्युत्तिष्ठते स इदं सर्वं विसृजति विस्थापयति प्रस्थापयत्याच्छादयति प्रकाशयति विमोचयत्येक एव' इति श्रुतेः परमात्माऽपि न लीयते। अश्रुतत्वाद्ब्रह्मलयस्य। निलीन शब्देनापिहितत्वमुच्यते । तुच्छेनाभ्यपिहितं यदासीत्, इत् श्रुतेः ।

'स एतस्मिंस्तमसि निलीनः प्रकृतिं पुरुषं कालं चानुपश्यति कश्चन'

इति पैङ्गीश्रुतिः ।

'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्'

'स नित्यो निर्गुणो विभुः परः परमात्मा'।

'नित्यो विभुः कारणो लोकसाक्षी परो गुणैः सर्वदृक् शाश्वतश्च'

इत्यादि श्रुतिभ्यो नित्यत्वाच्च ॥ 17 ॥

॥ इति आत्माधिकरणम् ॥ 10 ॥

'नित्यो नित्यानाम्' इति जीवास्यापि नित्यत्वमुक्तम् । 'सर्व एते चिदात्मानो व्युच्चरन्ति' इत्युत्पत्तिरुच्यते । अतो विरोध इत्यत आह –

ॐ ज्ञोऽत एव ॐ ॥ 18-236 ॥

जीवोऽप्यत एव परमेश्वरादुत्पद्यते । शब्दादेव ।

'ते वा एते चिदात्मानोऽविनष्टाः परञ्ज्योतिर्निविशन्त्यविनष्टा एवोत्पद्यन्ते न विनश्यन्ति कदाचन' इति काषायणश्रुतिः ॥ 18 ॥

ॐ युक्तेश्च ॐ ॥ 19-237 ॥

नित्यस्यापि ह जीवस्योपाध्यक्षयोत्पत्तिर्युज्यते।

'उत्पद्यन्ते चिदात्मानो नित्यान्नित्याः परात्मनः ।

उपाध्यपेक्षया तेषामुत्पत्तिरपि गीयते'

इति व्योमसंहितायाम् ॥ 19 ॥

इति ज्ञाधिकरणम् ॥ 11 ॥

‘व्यासाह्यात्मानश्चेतना निर्गुणाश्च सर्वात्मानः सर्वरूपा अनन्ताः’ इति काषायणश्रुतौ व्याप्तत्वं प्रतीयते ।

‘अणुर्ह्येष आत्मायं वा एते सिनीतः । पुण्यं चापुण्यं च’

इति गौपवनश्रुतावणुत्वमित्यतो विरोध इति । अतो ब्रवीति-

ॐ उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ॐ ॥ 20-238 ॥

हेतूनाम् सकाशादणुरेव ।

‘सोऽस्माच्छरीरादुत्क्राम्यामुं लोकमभिगच्छत्यमुष्मादिमं

लोकमागच्छति स गर्भो भवति स प्रसूयते स कर्म कुरुते’

इति पौष्यायणश्रुतेः ॥ 20 ॥

तत्र स्वातन्त्र्य प्रतीतेः-

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रमीयते।

एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्’ इत्यादेश्च ॥

स्वयमेवेत्यतो वक्ति –

ॐ स्वात्मना चोत्तरयोः ॐ ॥ 21-239 ॥

‘स एतेनैव स्वात्मना परेणोमं गर्भमनुप्रविशति परेण जायते परेण कर्म कुरुते परेण नीयते परेणोन्नीयते। तं वा एतमभिवदन्ति स्वात्मा’ इति।

‘एष ह्यानन्दमादत्ते एष ह्येनं जीवमभिजीवयत्येष उद्गमयत्येष आगमयति। इत्युत्तरयोर्वाक्ययोः

परमात्मनैवोत्क्रान्त्यादयः ॥ 21 ॥

ॐ नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ॐ ॥ 22-240 ॥

‘व्यासाह्यात्मानश्चेतना निर्गुणाश्च’ इति व्याप्तिश्रुतेर्नाणुर्जीव इति चेन्न ।

‘स आत्मेदं सृजति स द्विधेदं बिभर्ति अन्तर्बहिश्च । स बहुधेदमनुप्रविश्यात्मनोऽभिनयति । स आत्मा

स आत्मानः स ईशः स विष्णुः स परः परोवरीयान्’ इति परमात्माधिकारत्वात् ।

‘एकशब्दैर्द्विशब्दैश्च बहुशब्दैश्च केशवः ।

एक एवोच्यते वेदैस्तावता नास्य भिन्नता' इति भविष्यत्पुराणे ।

'तदयं प्राणोऽधितिष्ठति। तदुक्तमृषिणाऽऽतेन यातम्' इत्यादि च ॥ 22 ॥

ॐ स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ॐ ॥ 23-241 ॥

'एषो ह्यात्माऽध्युद्गतो मानशक्तेस्तथाऽप्यसौ प्रमितिं याति वेदैः ।

पूर्वोऽचिन्त्यः सर्ववेदैकयोनिः सर्वाधीशः सर्ववित् सर्वकर्ता'

इति वाक्यशेषे आत्मशब्दोन्मानाभ्यां च।

'आत्माऽमेयः परं ब्रह्म परानन्दादिकाभिधाः।

वदन्ति विष्णुमेवैकं नान्यत्रासां गतिः क्वचित्' इति च कौर्मै ॥ 23 ॥

ॐ अविरोधश्चन्दनवत् ॐ ॥ 24-242 ॥

अणोरपि जीवस्य सर्वशरीरव्याप्तिर्युज्यते। यथा हरिचन्दनविष्णुष एकदेशपतितायाः सर्वशरीरव्याप्तिः ।

'अणुमात्रोऽप्ययं जीवः स्वदेहं व्याप्य तिष्ठति ।

यथा व्याप्य शरीराणि हरिचन्दनविष्णुषः' इति च ब्रह्माण्डपुराणे ॥ 24 ॥

ॐ अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि ॐ ॥ 25-243 ॥

सम्यगसम्यगवस्थानविशेषाद्युज्यते चन्दनस्येति चेन्न। 'हृदि ह्येषा आत्मा' इति जीवास्यापि

तथाऽभ्युपगमात् ॥ 25 ॥

ॐ गुणाद्वाऽऽलोकवत् ॐ ॥ 26-244 ॥

यथाऽऽलोकस्य प्रकाशगुणेन व्याप्तिर्ज्योतीरूपेणाव्याप्तिः एवं चिद्गुणेन व्याप्तिर्जीवरूपेणाव्याप्तिरिति

वा । स्कान्दे च –

'असम्यक् सम्यगिति च व्यवस्थाभेदतः सुराः।

व्याप्त्यव्याप्तियुतास्त्वन्ये चिद्गुणेनैव नान्यथा ॥

चिद्गुणस्य स्वरूपत्वात् तद्व्याप्तिश्चेति युज्यते।

शक्तियोगात् सुराणां तु विविधा च व्यवस्थितिः' इति ॥ 26 ॥

॥ इति उत्क्रान्त्यधिकरणम् ॥ 12 ॥

‘स नित्यो निरवयवः पुण्ययुक् पापयुक् च स इमं लोकममुं चावर्तते स विमुच्यते स एकधा न सप्तधा
न शतधा’ इति गौपवनश्रुतावेकस्याबहुत्वं प्रतीयते ।
‘स पञ्चधा स सप्तधा स दशधा भवति स शतधा च सहस्रधा स गच्छति स मुच्यते’ इति
पाराशर्यायणश्रुतौ बहुरूपत्वं प्रतीयते ।
अतो विरोधं परिहरति-

ॐ व्यतिरेको गन्धवत् तथा च दर्शयति ॐ ॥ 27-245 ॥

यथा पुष्पाद्गन्धः पृथग्गच्छति एवमंशिनो जीवादंशाः पृथग्गच्छन्ति ।
‘अथैक एव सन् गन्धवद्व्यतिरिच्यते । अथैकी भवति । अथ बह्वी भवति ।
तं यथा यथेश्वरः कुरुते तथा भवति सोऽचिन्त्यः परमो गरीयान्’
इति शाण्डिल्यश्रुतिः ।
‘अचिन्त्ययेशशक्त्यैव ह्येकोऽवयववर्जितः ।
आत्मानं बहुधा कृत्वा क्रीडते योगसम्पदा’ इति च पाद्मे ॥ 27 ॥

॥ इति व्यतिरेकाधिकरणम् ॥ 13 ॥

‘तत्त्वमसि’ , ‘अहं ब्रह्मास्मि’ इत्यादिषु जीवस्य परेणाभेदः प्रतीयते । ‘नित्यो नित्यानां
चेतनश्चेतनानाम्’ ‘द्वा सुपर्णा’ इत्यादिषु भेदः । अत उच्यते-

ॐ पृथगुपदेशात् ॐ ॥ 28-246 ॥

‘बिन्नोऽचिन्त्यः परमो जीवसङ्घात्पूर्णः परो जीवसङ्घो ह्यपूर्णः । यतस्त्वसौ नित्यमुक्तो ह्ययं च
बन्धान्मोक्षं तत एवा-भिवाञ्छेत्’
इति सोपपत्तिककौशिकश्रुतेर्भिन्न एव जीवः ॥ 28 ॥

ॐ तद्गुणसारत्वात् तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ॐ ॥ 29-247 ॥

ज्ञानानन्दादिब्रह्मगुणा एवास्य यतः सारः स्वरूपमतोऽभेदव्यपदेशः । यथा सर्वगुणात्मकत्वात्
सर्वात्मकत्वं ब्रह्मण उच्यते ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ इति भविष्यत्पर्वणि च -
‘भिन्ना जीवाः परो भिन्नस्तथापि ज्ञानरूपतः ।
प्रोच्यन्ते ब्रह्मरूपेण वेदवादिषु सर्वशः’ इति ॥ 29 ॥

॥ इति पृथगुपदेशाधिकरणम् ॥ 14 ॥

जीवास्याप्युत्पत्तिरुक्ता । अतस्तस्य

‘सोऽनादिना पुण्येन पापेन चानुबद्धः ।

परेण निर्मुक्त आनन्त्याय कल्पते’ ।

इत्यानादिकर्मसम्बन्ध आनन्त्यावाप्तिश्च न युज्यत इत्यत आह –

ॐ यावदात्माभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॐ ॥ 30-248 ॥

यावत्परमात्मा तिष्ठत्यनाद्यनन्तत्वेनैवं जीवोऽपि ।

‘नित्यः परो नित्यो जीवोऽनित्यस्तस्य धातवः ।

अत उत्पद्यते च म्रियते च विमुच्यते च’ इति च आग्निवेश्यश्रुतिः ।

‘आत्मा नित्यः सखदुःखे त्वनित्ये,

जीवो नित्यो धातुरस्य त्वनित्यः’ इति च भारते ॥ 30 ॥

॥ इति यावदधिकरणम् ॥ 15 ॥

‘विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः’ । ‘स आनन्दः स बलः स ओजः स परेणामुं लोकं नीयते स विमुच्यत

इति जीवस्य ज्ञानानन्दादिरूपत्वमुच्यते । स दुःखाद्विमुक्त आनन्दी भवति । सोऽज्ञानाद्विमुक्तो ज्ञानी

भवति । सोऽबलाद्विमुक्तो बली भवति । स नित्यो निरातङ्कोऽतिष्ठते’ इति पैङ्गीश्रुतावनानन्दादिरूपत्वं

प्रतीयते । अत आह –

ॐ पुंस्त्वादिवत्त्वस्यसतोऽभिव्यक्तियोगात् ॐ ॥ 31-249 ॥

यथा बालस्य सदेव पुंस्त्वं यौवनेऽभिव्यज्यत एवं सतामेवानन्दादीनां व्यक्त्यपेक्षया तदुक्तिः ।

‘बलमानन्द ओजश्च सहो ज्ञानमनाकुलम् ।

स्वरूपाण्येव जीवस्य व्यज्यन्ते परमाद्विभोः’ इति च गौपवनश्रुतिः ॥ 31 ॥

ॐ नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा ॐ ॥ 32-250 ॥

व्यक्तनङ्गीकारे देवानां च नित्योपलब्धिरानन्दादीनामसुराणां नित्यानुपलब्धिर्मनुष्याणां च

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धी च प्रसज्येते । ‘नित्यानन्दो नित्यज्ञानो नित्यबलः परमात्मा नैवमसुरा

एवमनेवं च मनुष्याः’ इति ह्याग्निवेश्यश्रुतिः । भविष्यत्पर्वणि च-

ॐ शक्तिविपर्ययात् ॐ ॥ 38-256 ॥

अल्पशक्तित्वाजीवस्य ॥ 38 ॥

ॐ समाध्यभावाच्च ॐ ॥ 39-257 ॥

समाधानाभावाच्चास्वातन्त्र्यं प्रतीयते ॥ 39 ॥ अथः-

ॐ यथा च तक्षोभयथा ॐ ॥ 40-258 ॥

यथा तक्षणः कारयितुनियतत्वं कर्तृत्वं च विद्यते एवं जीवस्यापि ॥ 40 ॥

ॐ परात् तु तच्छ्रुतेः ॐ ॥ 41-259 ॥

सा च कर्तृत्वशक्तिः परादेव ।

‘कर्तृत्वं करणत्वं च स्वभावश्चेतना धृतिः ।

यत्प्रसादादिमे सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया’ इति हि पैङ्गि श्रुतिः ॥ 41 ॥

ॐ कृतप्रयत्नापेक्षस्तुविहितप्रतिषेधावैयर्थ्यादिभ्यः ॐ ॥ 42-260 ॥

ततोऽप्रयोजकत्वं शास्त्रस्य नापद्यते । कृतप्रयत्नापेक्षत्वात् तत्प्रेरकत्वस्य । आदिशब्देनावैषम्यादि ।

‘पूर्वकर्म प्रयत्नं च संस्कारं चाप्यपेक्ष्यतु ।

ईश्वरः कारयेत् सर्वं तच्चेश्वरकृतं स्वयम् ॥

अनादित्वाददोषश्च पूर्णशक्तित्वतो हरेः’ इति भविष्यत्पर्वणि ।

‘एतदेवं न चाप्येवमेतदस्ति च नास्ति च’ इति च मोक्षधर्मे ॥ 42 ॥

॥ इति कर्तृत्वाधिकरणम् ॥ 17 ॥

‘अंशा एव हीमे जीवा अंशी हि परमेश्वरः ।

स्वयमंशैरिदं सर्वं कारयत्यचलो हरिः’ ॥

इति गौपवनश्रुतौ अंशत्वं जीवस्योपलभ्यते ।

‘नैवांशो न सम्बन्धो नापेक्ष्यो जीवः परस्य ।

तथाऽपि तु यथायोगं फलदः प्रभुरेकराट् ।

न नियम्यः स कस्यापि स सर्वस्य नियामकः’ ॥ इति च भाल्लवेयश्रुतौ ॥

अतो ब्रवीति-

ॐ अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ॐ

॥ 43-261 ॥

‘मां रक्षतु विभुर्नित्यं पुत्रोऽहं परमात्मनः’ ।

‘अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण’ ।

‘यस्तद्वेद स पितुष्टिताऽसत्’ ।

‘यस्ताविजानात् स पितुष्पिताऽसत्’ ।

‘द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति’

इत्यादिना नावाव्यपदेशादंशो जीवः । तथा च पाराशर्यायणश्रुतिः-

‘अंशो ह्येष परस्य योऽयं पुमानुत्पद्यते च म्रियते च नाना ह्येनं व्यपदिशन्ति पितेति पुत्रेति भ्रातेति सखेति’ च इति ।

‘अन्यः परोऽन्यो जीवो नासावस्य कुतश्चन ।

नायं तस्यापि कश्चन’ इत्यन्यथा च काषायणश्रुतिः ।

‘ब्रह्मा दाशा ब्रह्म कितवाः, ब्रह्मैवेमे दाशा’

इत्यभेदेनाप्येकेऽधीयते । तथा चाग्निवेश्यश्रुतिः-

‘अंशो ह्येष परस्य भिन्नं ह्येनमधीयिरेऽभिन्नं ह्येनमधीयिरे’ इति ॥

वाराहे च-

‘पुत्रभ्रातृसखित्वेन स्वामित्वेन यतो हरिः ।

बहुधा गीयते वेदैर्जीवोऽशस्तस्य तेन तु ॥

यतो भेदेन तस्यायमभेदेन च गीयते ।

अतश्चांशत्वमुद्धिष्टं भेदाभेदौ न मुख्यतः’ इति ॥ 43 ॥

ॐ मन्त्रवर्णात् ॐ ॥ 44-262 ॥

‘पादोऽस्य विश्वा भूतानि’ इति ॥ 44 ॥

ॐ अपि स्मर्यते ॐ ॥ 45-263 ॥

‘ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातन’ इति ॥ 45 ॥

अनंशत्वश्रुतेर्गतिं चाह -

ॐ प्रकाशादिवन्नैवं परः ॐ ॥ 46-264 ॥

अंशत्वेऽपि न मत्स्यादिरूपी पर एवविधः। यथा तेजोऽम्शस्यैव कालाग्नेः खद्योतस्य च नैकप्रकारता।

यथा जलांशस्यामृतसमुद्रस्य मूत्रादेश्च । यथा च पृथिव्यंशस्य मेरोर्विष्टादेश्च ।

अभिमानिदेवतापेक्षयैतत् ॥ 46 ॥

ॐ स्मरन्ति च ॐ ॥ 47-265 ॥

‘एते स्वांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्’ ।

‘अतः परं यदव्यक्तमव्यूहगुणबृंहितम् ।

अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात् स जीवो यः पुनर्भवः’ ॥

‘स्वांशश्चाथो विभिन्नांश इति द्वेषाऽम्श इष्यते ।

अंशिनो यत् तु सामर्थ्यं यत् स्वरूपं यथास्थितिः ॥

तदेव नाणुमात्रोऽपि भेदः स्वांशांशिनोः क्वचित् ।

विभिन्नांशोऽल्पशक्तिः स्यात् किञ्चित्सादृश्यमात्रयुक्’ ॥ इति वाराहे ।

‘न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः’ इति च ॥ 47 ॥

ॐ अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत् ॐ ॥ 48-266 ॥

परानुज्ञया प्रवृत्तिः परतो बन्धनिवृत्तिश्च जीवस्य प्रतीयते, अंशत्वेऽपि देहसम्बन्धात् । ‘य

आत्मानमन्तरो यमयति’ । ‘तमेवं विद्वानमृत इह भवति’ इत्यादिना । न तु परस्य।

‘वासुदेव सङ्कर्षणः प्रद्युम्नोऽनिरुद्धोऽहं मत्स्यः कूर्मो वराहो नारसिंहो वामनो रामो रामः कृष्णो बुद्धः

कल्किरहं शतधाऽहं सहस्तधाऽहमितेऽहमनन्तोऽहं नैवैते जायन्ते न म्रियन्ते नैषामनुज्ञान बन्धो न

मुक्तितो सर्व एव ह्येते पूर्णा अजरा अमृताः परमाः परानन्दाः’ इति चतुर्वेदशिखायाम् ।

युज्यते च ज्योतिरादिवत् यथाऽऽदित्यो वियद्गतस्तत्प्रकाशश्चैकप्रकारः । 'शुक्लं कृष्णं कनीनिका' इति तदंशस्याप्यक्ष्णो देहसम्बन्धान्न तादृशी शक्तिः । तदनुग्राह्यत्वं तेनैवावृतिपरिहारश्च । यथा बाह्यामृतजलस्यामृतसमुद्रस्य चैकत्वं तदंशस्यापि श्लेषणस्तदनुग्राह्यत्वं तेनैव विरोधिनिवृत्तिश्च ।
मोक्षधर्मे च –

'यत्किञ्चिदिह लोकेऽस्मिन् देहबद्धं विशांपते ।
सर्वं पञ्चभिराविष्टं भूतैरीश्वरबुद्धिजैः ॥
ईश्वरो हि महद्भूतं प्रभुर्नारायणो विराट् ।
भूतान्तरात्मा विज्ञेयः सगुणो निर्गुणोऽपि च ॥
भूतप्रलयमव्यक्तं शुश्रूषुर्नृपसत्तम' इति ।

वाराहे च-

'अंशाश्च देहयोग्यत्वाज्जीवा बन्धादिसंयुताः ।
अनुग्राह्याश्चेश्वरेण न तु मत्स्यादिको हरिः ॥
अदेहबन्धयोग्यत्वाद्यथासूर्यप्रभाऽक्षिणी ।
यथाऽमृतसमुद्रस्य श्लेषादेश्च द्विरूपता ॥
अनुग्राह्यत्वमन्यस्य तेनैवावृतिरोधनम्' इति ॥ 48 ॥

ॐ असन्ततेश्चाव्यतिकरः ॐ ॥ 49-267 ॥

अपूर्णशक्तित्वाच्च जीवस्य न मत्स्यादिसाम्यम् । तथा च चतुर्वेदशिखायाम्-
'तस्य ह वा एतस्य परमस्य त्रीणि रूपाणि, कृष्णो रामः कपिलः इति । तस्य ह वा एतस्य परमस्य पञ्चरूपाणि दशरूपाणि शतरूपाणि सहस्ररूपाण्यमितरूपाणि । तानि ह वा एतानि सर्वाणि पूर्णानि सर्वाण्यनन्तानि सर्वाण्यसम्मितानि । अथावराः सर्व एवापूर्णाः सर्वे एव बध्यन्तेऽथ मुच्यन्ते च केचन' इति ॥ 49 ॥

ॐ आभास एव च ॐ ॥ 50-268 ॥

'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' इति प्रतिबिम्बत्वाच्च न साम्यम् ।

वाराहे च-

'द्विरूपपूर्वशकौ तस्य परमस्य हरेर्विभोः ।

प्रतिबिम्बांशकश्चाथ स्वरूपांशक एव च ॥

प्रतिबिम्बांशका जीवाः प्रादुर्भावाः परे स्मृताः ।

प्रतिबिम्बेष्वल्पसाम्यं स्वरूपाणीतराणि तु' इति ॥

'सोपाधिरनुपाधिश्च प्रतिबिम्बो द्विधेयते ।

जीव ईशस्यानुपाधिरिन्द्रचापो यथा रवेः' इति पैङ्गिश्रुतिः ॥

'यथैषा पुरुषे छाया एतस्मिन्नेतदाततम्' इति च श्रुतिः ॥ 50 ॥

॥ इति अंशाधिकरणम् ॥ 18 ॥

प्रतिबिम्बानां मिथो वैचित्र्ये कारणमाह –

ॐ अदृष्टनियमात् ॐ ॥ 51-269 ॥

अनादिविद्याकर्मादिवैचित्र्याद्वैचित्र्यम् ॥ 51 ॥

ॐ अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम् ॐ ॥ 52-270 ॥

इच्छाद्वेषसुखदुःखादिवैचित्र्यं चादृष्टादेव । च शब्देन प्रतिक्षणवैचित्र्यं च ॥ 52 ॥

ॐ प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात् ॐ ॥ 53-271 ॥

न स्वर्गभूम्यादिप्रदेशविशेषाद्वैचित्र्यम् । तत्प्राप्तेरप्यदृष्टापेक्षत्वात् । एकदेशस्थितानामेव वैचित्र्यदर्शनाच्च ॥ 53 ॥

॥ इति अदृष्टाधिकरणम् ॥ 19 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते ब्रह्मसूत्रभाष्ये द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ 02-

03 ॥

चतुर्थः पादः ॥ 02-04 ॥

युक्तिसहितश्रुतिविरोधं श्रुतीनामपाकरोत्यनेन पादेन ।

'प्राणा एवेदमग्र आसुस्तेभ्यो भूतानि जज्ञिरे । भूतेभ्योऽण्डमण्डस्यान्तस्त्वमे लोकाः । अथ प्राणा

एवानादयः प्राणा नित्याः' इति काषायणश्रुतौ प्राणानामनुत्पत्तिः श्रूयते ।

'नोपादानं हीन्द्रियाणामतोऽनुत्पत्तिरिष्यते ।

उपादानकृता सृष्टिः सर्वलोकेषु दृष्यते' इति भविष्यत्पर्वणि ॥

‘एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च’ इति च ।

अत उच्यते -

ॐ तथा प्राणाः ॐ ॥ 01-272 ॥

यथाऽऽकाशादयः परमात्मन उत्पद्यन्ते तथा प्राणा अपि ॥ 01 ॥

ॐ गौण्यसम्भवात् ॐ ॥ 02-273 ॥

अनादित्वश्रुतिर्गौणानादित्वापेक्षया । मुख्यासम्भवात् ।

‘नित्यान्येतानि सौक्ष्म्येण हीन्द्रियाणि तु सर्वशः ।

तेषां भूतरूपचयः सृष्टिकाले विधीयते ।

परेण साम्यसम्प्राप्तेः कस्य स्यान्मुख्यनित्यता’ इति भविष्यत्पर्वणि ॥ 02 ॥

ॐ प्रतिज्ञानुपरोधाच्च ॐ ॥ 03-274 ॥

‘इदं सर्वमसृजत’ इति ॥ 03 ॥

॥ इति प्राणाधिकरणम् (प्राणोत्पत्त्यधिकरणम्)

‘द्विधा हैवेन्द्रियाणि नित्यानि चानित्यानि च ।

तत्र नित्यं मनोऽनादित्वान्न ह्यमनाः पुमांस्तिष्ठत्यनित्यान्यन्यानि’

इति गौपवनश्रुतौ मनसोऽनुत्पत्तिः सयुक्तिका श्रूयते । अत आह-

ॐ तत् प्राक्षुतेश्च ॐ ॥ 04-275 ॥

‘मनः सर्वेन्द्रियाणि च’ इति पूर्वोक्तत्वान्नानुत्पत्तिर्मनसो युज्यते ।

‘पूर्वं मनः समुत्पन्नं ततोऽन्येषां समुद्भवः ।

तदनुत्पत्तिवचनमल्पोपचयकारणात् ॥

इति वायुप्रोक्तवचनं चशब्देन गृहीतम् ॥ 04 ॥

॥ इति मनोधिकरणम् (तत्प्रागधिकरणम्)

‘नित्ययाऽनित्यया स्तौमि परमात्मानमच्युत्तम्’ इति ।

‘वाग्वाव नित्या न ह्येषोत्पद्यतेऽस्यां हि श्रुतिरवतिष्ठते’

इति सयुक्तिकं पौष्यायणश्रुतौ वाचोऽनुत्पत्तिरुच्यते । अतो ब्रवीति –

ॐ तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ॐ ॥ 05-276 ॥

‘तस्मान्मन एव पूर्वरूपं वागुत्तररूपम्’

इति मनःपूर्वकत्वाद्वाचो नानुत्पत्तिः ।

‘वागिन्द्रियस्य नित्यत्वं श्रुतिसन्निधियोग्यता ।

उत्पत्तिर्मनसो यस्मान्न नित्यत्वं कुतश्चन’ इति वायुप्रोक्ते ॥ 05 ॥

॥ इति वागधिकरणम् (तत्पूर्वकत्वाधिकरणम्) ॥

‘सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्’ इति श्रुतिः।

‘सप्तैव मारुता बाह्ये प्राणाः सप्त तथाऽऽत्मनि ।

अधिदैवे तथाऽध्यात्मे सङ्ख्यासाम्यं विदो विदुः’ इति च स्कान्दे।

‘द्वादश वा एते प्राणा द्वादश मासा द्वादशादित्या द्वादशराशयो द्वादशग्रहाः’ इति कौण्डिन्यश्रुतौ

द्वादशप्राणादृष्यन्ते । अतो वक्ति-

ॐ सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ॐ ॥ 06-277 ॥

ज्ञानेन्द्रियापेक्षया सप्तत्वम् । ‘गुहाशयां निहिताः सप्त सप्त’ इति विशेषणात्।

‘सप्तप्राणास्त्ववगतेः पञ्चप्राणाश्च कर्मणः ।

एवं प्राणद्वादशकं शरीरे नित्यसंस्थितम्’ ।

इति भविष्यत्पूर्ववचनं चशब्दात् ॥ 06 ॥

ॐ हस्तादयस्तुस्थितेऽतो नैवम् ॐ ॥ 07-278 ॥

हस्तादीनां कर्मविषयत्वान्न सहपाठः।

‘संसारस्थितिहेतुत्वात् स्थितं कर्म विदो विदुः ।

तस्माद्दुद्गतिहेतुत्वाज्ज्ञानं गतिरिहोच्यते’ इति वायुप्रोक्ते ॥ 07 ॥

॥ इति सप्तगत्यधिकरणम् ॥ 04 ॥

‘दिवीव चक्षुराततम्’ इति व्याप्तिः प्रतीयते ।

दूरश्रवणदर्शनादियुक्तिश्च। अणुभिः पश्यत्यणुभिः कृणोति प्राणा वा अणवः प्राणैर्ह्येतद्भवति' इति च
कौण्डिन्यश्रुतिः ।
अतो वक्ति-

ॐ अणवश्च ॐ ॥ 08-279 ॥

'तद्यथा ह्यणुनश्चक्षसः प्रकाशो व्यातत एवमेवास्य पुरुषस्य प्रकाशो व्याततोऽणुर्ह्येष पुरुषो भवति'
इति शाण्डिल्यश्रुतिः ॥ 08 ॥

॥ इति अण्व(णुत्वा)धिकरणम् ॥ 05 ॥

'नैष प्राण उदेति नास्तमेत्येकल एव मध्ये स्थाता । अथैनमाहुर्मध्यम इति' इति
मुख्यप्राणस्यानुत्पत्तिः श्रूयते ।

'यत्प्राप्तिर्यत्परित्याग उत्पत्तिर्मरणं तथा ।
तस्योत्पत्तिर्मृतिश्चैव कथं प्राणस्य युज्यते' ॥

इति च युक्तिर्वायुप्रोक्ते ।

'आत्मत एष प्राणो जायते' इति च ।

अत आह

ॐ श्रेष्ठश्च ॐ ॥ 09-280 ॥

'सौक्ष्म्येण ह वा एषोऽवतिष्ठते स्थूलत्वेनोदेति सूक्ष्मश्चाथो स्थूलश्च प्रकृतितः सूक्ष्मोऽन्यतः
स्थूलोऽथैनमाहुः सादिरनादिरिति'

इति गौपवनश्रुतेः ॥ 09 ॥

ॐ न वायुक्रिये पृथुगुपदेशात् ॐ ॥ 10-281 ॥

'चेष्टायां बाह्यवायौ च मुख्यप्राणे च गीयते ।

प्राणशब्दस्त्रिषु ह्येषु मुखे मुख्यः प्रकीर्तितः'

इति वायुक्रियोरपि व्यपदेशादुत्पत्तिश्रुतिस्तयोर्न स्यात् । 'स प्राणमसृजत' ...'खं वायुर्ज्योतिरापः..',

'तपो मन्त्राः कर्म' इति पृथुगुपदेशात् ।

'भूतानि चेष्टा मन्त्राश्च मुख्यप्राणादिदं जगत् ।

मुख्यप्राणः परस्माच्च न परः कारणान्वितः' इति वायु प्रोक्ते ॥ 10 ॥

॥ इति मुख्यप्राणाधिकरणम् (श्रेष्ठाधिकरणम्)

'प्राणादिदमाविरासीत् प्राणो धत्ते प्राणे लयमभ्युपैति न प्राणः किञ्चिदाश्रितः' इत्याभिवेश्यश्रुतौ ।

'यदाश्रयादस्य चेष्टा सोऽन्यं कथमुपाश्रयेत् ।

यथा प्राणस्तथा राजा सर्वस्यैकाश्रयो भवेत्' इति च युक्तिर्भारते ।

'प्राणस्यैतद्वशे सर्वं प्राणः परवशे स्थितः ।

न परः कञ्चिदाश्रित्य वर्तते परमो यतः' इति पैङ्गिश्रुतिः ।

अत आह-

ॐ चक्षुरादिवत् तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ॐ ॥ 11-282 ॥

चक्षुरादिन्मुख्यप्राणोऽपि परमात्मवश एव ।

'सर्वं ह्येवैतत् परमेऽवतिष्ठते प्राणश्च प्राणाश्च प्राणिनश्च स ह्येक एवैतान्नयत्युन्नयति वशीकरोति'

इति गौपवनश्रुतौ चक्षुरादिभिः सह तद्वशत्वेनैव शासनात् ।

'सर्वकर्ताऽपि सन् प्राणः परमाधारतः स्थितः ।

कथमेवान्यथा न स्याद्यतो नैवेश्वरद्वयम् ।

अवान्तरेश्वरत्वेन तस्येश्वरवचो भवेत् ।

अतो मध्यमतामाहुस्तस्य वेदेषु वेदिनः ।

अनन्येश्वरता प्राणे तदन्येश्वरवर्जनात् ।

यतो विशेषवाक्येन हियते समतावचः' ।

'नान्योऽतोऽस्तिद्रष्टा' 'नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ'

इत्यादिवचनयुक्तय आदिशब्दोक्ताः ॥ 11 ॥

ॐ अकरणत्वाच्च न दोषस्तथा हि दर्शयति ॐ ॥ 12-283 ॥

इतरेषां प्राणानां करणत्वान्मुख्यस्याकरणत्वात् तस्यानेभ्य उत्तमत्वं युज्यते । माण्डव्यश्रुतिश्च –

'तानि ह वा एतानि सर्वाणि करणान्यथ प्राण

एवाकरणस्तस्मान्मुख्यस्तस्मान्मुख्य इत्याचक्षते' इति ॥ 12 ॥

॥ इति चक्षुराद्यधिकरणम् ॥ 07 ॥

‘सर्वे वा एते मुख्यदासाः प्राणोऽपानो व्यान उदानः समान इति ।

‘अथ प्राणो वाव सम्राट्’ इति कौण्डिन्यश्रुतिः ।

‘प्राणापानादयः सर्वे मुख्यदासा यतेऽनिशम् ।

अतस्तदाज्ञया नित्यं स्वानि कर्माणि कुर्वते’ इति युक्तिर्वायुप्रोक्ते ।

‘मुख्यस्यैव स्वरूपाणि प्राणाध्याः पञ्चवायवः ।

स एव प्राणिनां देहे पञ्चधा वर्ततेऽनिशम्’ इति च गौपमश्रुतिः ।

अतो वक्ति-

ॐ पञ्चवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिश्यते ॐ ॥ 13-284 ॥

‘अथ पञ्चवृत्तैतत्प्रवर्तते प्राणा वाव पञ्चवृत्तिः प्राणोऽपानो व्यान उदानः समान इति । तेभ्यो वा एतेभ्यः पञ्चदासाः प्रजायन्ते । प्राणाद्वावा प्राणोऽपानादपानो व्यानाद्व्यान उदानादुदानः समानादेव समानो यथा ह वै मनः पञ्चधा व्यपदिश्यते मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तं चेतनेति । तेभ्यो वा एतेभ्यः पञ्च दासाः प्रजायन्ते । मनसो वाव मनो बुद्धेर्बुद्धिरहङ्कारादहङ्कारश्चित्ताच्छित्तं चेतनाया एव चेतनैवमिति’ इति

॥ इति पञ्चवृत्त्यधिकरणम् ॥ 08 ॥

‘प्राण एवाधस्तात् प्राण उपरिष्ठात् प्राणो मध्यतः प्राणः सर्वतः प्राण एवेदं सर्वम्’ इति प्राणस्य व्याप्तिः प्रतीयते ।

‘यतः सर्वं जगद्वाप्य तिष्ठति प्राण एव तु ।

अतो धृतं जगत् सर्वमन्यथा केन धार्यते’ इति च युक्तिर्वायुप्रोक्ते ।

‘अणुनैतत्सृज्यतेऽणुनैतद्धार्यते अणौ लयमभ्युपैति प्राणो वा अणुः प्राणो ह्येतद्भवति’ इति च सौत्रायणश्रुतिः ॥

अत आह -

ॐ अणुश्च ॐ ॥ 14-285 ॥

स वा एष प्राणोऽणुर्महान्नामाऽन्तर्वाऽणुर्बहिर्महान् प्राणो वा ईशितव्येश ईशो ह्यसौ सर्वस्येशितव्यश्च
परस्य' इति हि कौण्डिन्यश्रुतिः ॥ 14 ॥

॥ इति प्राणाणुत्वाधिकरणम् ॥ 09 ॥

करणत्वं प्राणानामुक्तम् ।

'जीवस्य करणान्याहुः प्राणानेतांस्तु सर्वशः ।

यस्मात् तद्वशगा एते दृश्यन्ते सर्वदेहिषु'

इति सौत्रायणश्रुतौ सयुक्तिकं जीवकरणत्वं प्रतीयते ।

'ब्रह्मणो वा एतानि करणानि चक्षुः श्रोत्रं मनो वागिति तद्येतैः कारयति' इति काषायणश्रुतौ । अत

आह –

ॐ ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ॐ ॥ 15-286 ॥

यज्योतिराद्यधिष्ठानं ब्रह्म तदेवैतैः करणैः प्रवर्तयति ।

'यः प्राणे तिष्ठन्' इत्यादि तदामननात् ॥ 15 ॥

कथं जीवकरणत्वश्रुतिरित्यतो वक्ति –

ॐ प्राणवता शब्दात् ॐ ॥ 16-287 ॥

जीवेनैव स्वकरणैः कारयति परमात्मा । अतो न विरोधः । एष ह्यनेनात्मना चक्षुषा दर्शयति श्रोत्रेण
श्रावयति मनसा मनयति बुद्ध्या बोधयति तस्मादेतावाहुः सृतिरसृतिरिति' इति भाल्लवेयश्रुतेः ।

'करणैः कारणं ब्रह्म पुरुषापेक्षयाऽखिलम् ।

श्रोत्रादिभिः कारयति करणानीत्यतो विदुः ।

न जीवापेक्षया मुख्यं कारयेत् परमेश्वरः ।

केवलात्मेच्छया तस्मान्मुख्यत्वं तस्य निश्चितम्' इति वाराहे ॥ 16 ॥

ॐ तस्य च नित्यत्वात् ॐ ॥ 17-288 ॥

अनादिनित्यत्वाज्जीवकरणसम्बन्धस्य युज्यते तत्करणत्वश्रुतिः । 'अथावियोगीनि । करणैर्चाव न
वियुज्यते देहेनैव वियुज्यत इत्येतद्वाव करणानां करणत्वं यद्वाव न वियुज्यते' इति गौपवनश्रुतिः ।

चशब्दः करणसम्बन्धग्राही ॥ 17 ॥

॥ इति ज्योतिराद्यधिकरणम् ॥ 10 ॥

‘अथेन्द्रियाणि प्राणा वा इन्द्रियाणि प्राणा हीदं द्रवन्ति’
इति सयुक्तिकपौत्रायणश्रुतिः सामान्येन प्राणानामिन्द्रियत्वं वक्ति ।
‘द्वादशैवेन्द्रियाण्याहुर्मनोबुद्धी तु द्वादश’ इति च काषायणश्रुतिः
अतः कस्येन्द्रियत्वं निवार्यत इत्यतो वक्ति-

ॐ त इन्द्रियाण् तद्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ॐ ॥ 18-289 ॥

मुख्यप्राणमृते त एवेन्द्रियाणि ।
‘द्वादशैवेन्द्रियाण्याहुः प्राणो मुख्यस्त्वनिन्द्रियम् ।
द्रवतां हीन्द्रियाणां तु नियन्ता प्राण एकराट्’ इति पौत्रायणश्रुतिः ।
‘श्रोत्रादीनि तु पञ्चैव तथा वागादिपञ्चकम् ।
मनोबुद्धिसहायानि द्वादशैवेन्द्रियाणि तु ।
विषयद्रवणात् तेषामिन्द्रियत्वमुदाहृतम् ।
तेषां नियामकः प्राणः स्थित एवाखिलप्रभुः’ इति बृहत्संहितायाम् ॥ 18 ॥

ॐ भेदश्रुतेः ॐ ॥ 19-290 ॥

‘स्थित एव हीदं मुख्यप्राणः करोति कारयति बलति बालयति धत्ते धारयति प्रभुं वा
एनमाहुरथेन्द्रियाणि न स्थितानि न कुर्वन्ति न कारयन्ति न बलन्ति न बालयन्ति न दधते न धारयन्ति
तानि ह वा एतान्यबलानि तस्मादाहुरिन्द्रियाणि करणानि’ इति पौत्रायणश्रुतेः ॥ 19 ॥

ॐ वैलक्षण्याच्च ॐ ॥ 20-291 ॥

पुरुषापेक्षया प्रवृत्तिरिन्द्रियाणां दृष्यते न मुख्यस्य ।
‘प्राणान्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति’ इति च श्रुतेः ॥ 20 ॥

॥ इति इन्द्रियाधिकरणम् ॥ 11 ॥

‘विरिञ्चो वा इदं सर्वं विरेचयति विदधाति ब्रह्मा वाव विरिञ्च एतस्माद्धीमे रूपनामानी’ इति
गौपवनश्रुतिः ॥

‘यस्माद्विरेचयेत् सर्वं विरिञ्चस्तेन भण्यते ।

एको हि कर्ता जगतो ब्रह्मैव च चतुर्मुखः' इति च युक्तिर्ब्राह्मे ।

अथ कस्मादुच्यते परम इति परमाद्येते नामरूपे व्याक्रियेते तस्मादेनमाहुः परम इति । अथ कस्मादुच्यते ब्रह्मेति बृहत्त्वाद् बृहणत्वाच्च' इत्याग्निवेश्यश्रुतिः ।

अत आह-

ॐ सङ्ज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तुत्रि वृत्कुर्वत उपदेशात् ॐ ॥ 21-292 ॥

नामरूपक्लृप्तिः परादेव ।

'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वाऽभिवदन् य आस्ते'

इति श्रुतेः ।

त्रिवृत्कुर्वत इति हेतुगर्भः । त्रिवृत्करणापेक्षत्वान्नामरूपयोः ॥

'सर्वनाम्नां च रूपाणां व्यवहारेषु केशवः ।

एक एव यतः स्रष्टा ब्रह्माद्यास्तदवान्तराः' इति च पाद्वे ॥

'त्रिवृत्क्रिया यतो विष्णो रूपं च तदपेक्षया ।

रूपापेक्षं तथा नाम व्यवहारस्तदात्मकः ॥

अतो नाम्नश्च रूपस्य व्यवहारस्य चैकराट् ।

हरिरेव यतः कर्ता पिताऽतो भगवान् प्रभुः' इति च ब्रह्माण्डे ॥ 21 ॥

॥ इति सङ्ज्ञाधिकरणम् ॥ 12 ॥

'अद्ब्यो हीदमुत्पद्यते आपो वाव मांसमस्थि च भवन्त्यापः शरीरमाप एवेदं सर्वम्' इति कौण्डिन्यश्रुतिः ।

'अम्मयं तु यतो मांसमतस्तृप्तिश्च मांसतः' इति च भारते ।

'पृथिवी शरीरमाकाशमात्मा' इति च

अतो ब्रवीति -

ॐ मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ॐ ॥ 22-293 ॥

'यत् कठिनं सा पृथिवी यद्द्रवं तदापो यदुष्णं तत् तेजः'

इति श्रुतेर्मांसाद्येव भौमं न सर्वशरीरम् । अप्तेजसोश्च कार्यं यथाशब्दमङ्गीकर्तव्यम् ॥

‘यद्वा वाऽथो विमिश्रं मिश्राद्धेतद्भवति मिश्राणि हि भूतानि तस्मादेवैवमाचक्षते भूतानि’ इति हि काषायणश्रुतिः ।

‘पञ्चभूतात्मकं सर्वं तदप्येकविवक्षया ।

एकभूतात्मकत्वेन व्यवहारस्तु वैदिके ।

भौममित्येव काठिन्याच्छौक्यादौदकमित्यपि ।

तेजिष्ठत्वात् तैजसं च यथाऽस्त्रां वचनं श्रुतौ’ इति वायुप्रोक्ते ॥ 22 ॥

कथं तर्हि विशेषवचनमित्यत आह-

ॐ वैशेष्यात् तु तद्वादस्तद्वादः ॐ ॥ 23-294 ॥

भूतानां विशेषसंयोगादेव विशेषव्यवहारः ।

‘पार्थिवानां शरीराणामर्धेन पृथिवी स्मृताः ।

इतरेऽर्धे त्रिभागिन्य आपस्तेजस्तुभागतः ॥

इति सामान्यतो ज्ञेयं भेदश्च प्रतिपूरुषम् ।

स्वर्गस्थानां शरीराणामर्धं तेज उदाहृतम्’

इति च ब्रह्मसंहितायाम् ॥

सर्वाध्यायार्थावधारणार्थऽध्यायान्ते द्विरुक्तिः ।

गारुडे च-

‘अध्यायान्ते द्विरुक्तिः स्याद्वेदे वा वैदिकेऽपि वा ।

विचारो यत्र सज्येत पूर्वोक्तस्यावधारणे ॥

अनुक्तानां प्रमाणानां स्वीकारश्च कृतो भवेत् ।

विनिन्द्य चेतरेण मार्गान् सम्पूर्णफलता तथा ॥ इति ॥ 23 ॥

इति मांसा(ध्य)धिकरणम् ॥ 13 ॥

॥ इति श्रीमद्ब्रह्मसूत्रे द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ 02-04 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये द्वितीयाध्यायः (अविरोधाध्यायः)

॥ 02 ॥

तृतीयाध्यायः (साधनाध्यायः) ॥03॥

प्रथमः पादः ॥ 03-01 ॥

साधनविचारोऽयमध्यायः । वैराग्यार्थं गत्यादिनिरूपणा प्रथमपादे।

भूतबन्धो हि बन्धः।

‘भूतबन्धस्तु संसारो मुक्तिस्तेभ्यो विमोचनम्’ इति वाराहे ।

तच्च मरणे भवति।

भूतानां विनिवृत्तिस्तु मरणं समुदाहृतम् ।

भूतानां सम्प्रयोगश्च जनिरित्येव पण्डितैः’ इति च भारते ॥

अतः किं साधनैरित्यत आह-

ॐ तदन्तरप्रतिपत्तौरंहति सम्परिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ॐ ॥ 01-295 ॥

शरीरान्तरप्रतिपत्तौ भूतसम्परिष्वक्त एव गच्छति ।

‘वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति’

‘इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति’

इति प्रश्नपरिहाराभ्याम् ॥ 01 ॥

इति तदन्तराधिकरणम् ॥ 01 ॥

ॐ त्र्यात्मकत्वात् तु भूयस्त्वात् ॐ ॥ 02-296 ॥

अच्छब्दस्तुत्र्यात्मकत्वाद्बुज्यते । भूयस्त्वाच्चापाम् ।

‘तापापनोदो भूयस्त्वमम्भसो वृत्तयस्त्विमाः’ इति च भागवते ॥ 02 ॥

॥ इति त्र्यात्मकत्वाधिकरणम् ॥ 02 ॥

ॐ प्राणगतेश्च ॐ ॥ 03-297 ॥

‘यत्र वाव भूतानि तत्र करणानि नित्यानि ह वा एतानि भूतानि च करणानि च नैतानि कदाचिद्वियुज्यन्ते न च विलीयन्ते’

इति भाल्लवेयश्रुतेः प्राणगतेर्भूतान्यपि सन्ति इति सिद्धम् ॥ 03 ॥

॥ इति प्राणागत्यधिकरणम् ॥ 03 ॥

ॐ अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ॐ ॥ 04-298 ॥

‘यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणः’ इत्यादिश्रुतेर्न प्राणानां जीवेन सह गतिरिति चेन्न भागतोऽग्न्यादिप्राप्तेः ।

‘पुरुषस्य मृतौ ब्रह्मन् प्राणा भागत एव तु अधिदैवं प्राप्नुवन्ति भागतोऽनुव्रजन्ति तम् । पुनः शरीरसम्प्राप्तौ तमेवानुविशन्ति च’ इति ब्राह्मे ।

ब्रह्माण्डे च-

‘मृतिकाले जहत्येनं प्राणा भूतानि पञ्च च । भागतो भागतस्त्वेनमनुगच्छन्ति सर्वशः’ इति ॥ 04 ॥

॥ इति अग्न्याद्यधिकरणम् ॥ 04 ॥

ॐ प्रथमेऽश्रवणादिति चेन्न ता एव ह्युपपत्तेः ॐ ॥ 05-299 ॥

‘तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति’ इति प्रथमाग्नौ श्रूयते न भूतानि जुह्वतीति । अतो नेति चेन्न । ता एव प्रस्तुता आपः श्रद्धारूपेण ह्यन्ते । ‘इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति’ इत्युपसंहारोपपत्तेः ॥ 05 ॥

॥ इति प्रथमश्रवणाधिकरणम् ॥ 05 ॥

ॐ अश्रुतत्वादिति चेन्नेष्टादिकारिणं प्रतीतेः ॐ ॥ 06-300 ॥

अग्न्यादिगतिः प्रत्यक्षतः श्रूयते । अतः प्रत्यक्षाश्रवणान्न युक्तमिति चेन्न । ‘अथैनं यजमानं किं न जहाति भूतान्येव भूतैरेव गच्छति भूतैर्भुङ्क्ते भूतैरुत्पद्यते भूतैश्चरति भूतैर्विचरति’ इति कौण्ठरव्यश्रुतौ प्रतीतेः ॥ 06 ॥

॥ इति अश्रुतत्वाधिकरणम् ॥ 06 ॥

‘अपाम सोमममृता अभूम’ इत्यादिश्रुतिविरोध इत्यतो वक्ति-

ॐ भाक्तं वाऽनात्मवित्त्वात् तथा हि दर्शयति ॐ ॥ 07-301 ॥

भागतस्तदमृतत्वम् । 'नान्यः पन्था अयनाय विद्यते' इति श्रुतेरात्मविद एव हि मुख्यम् । वाशब्दात् पारम्पर्येणात्मविदपेक्षया वा । तथा हि श्रुतिः -

'स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाऽननूक्तोऽन्यद्वाकर्माकृतं यदि ह वा अप्यनेवंविन्महत्पुण्यं कर्म करोति तद्वास्यान्तततः क्षीयत एवात्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते न हास्य कर्म क्षीयतेऽस्माद्येवात्मनो यद्यत्कामयते तत्तत् सृजते'

'अमृतो वाव सोमपो भवति यावदिन्द्रो योवन्मनुर्यावदादित्यः'।

'कर्मणा ज्ञानमातनोति ज्ञानेनामृतीभवति अथामृतानि कर्माणि यत एनममृतत्वं नयन्ति' इति च ॥ 07 ॥

॥ इति भाक्ताधिकरणम् ॥ 07 ॥

कृतस्य कर्मणो भोगेन क्षयान्मुक्तिरित्यत आह-

ॐ कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्याम् ॐ ॥ 08-302 ॥

'ततः शेषेणमं लोकमायाति पुनः कर्म कुरुते पुनर्गच्छति पुनरागच्छति' इति श्रुतेः -

'भुक्तशेषानुशयवानिमां प्राप्य भुवं पुनः ।
कर्म कृत्वा पुनर्गच्छेत् पुनरायाति नित्यशः ॥
आचतुर्दशमाद्वर्षात् कर्माणि नियमेन तु ।
दशावराणां देहानां कारणानि करोत्ययम् ॥
अतः कर्मक्षयान्मुक्तिः कुत एव भविष्यति'

इत्यादिस्मृतेश्च शेषवानेवायाति ॥ 08 ॥

॥ इति कृतात्ययाधिकरणम् ॥ 08 ॥

'यथेतमेव गच्छति यथेतमागच्छति स भुङ्क्ते स कर्म कुरुते स परिवर्तते' इति गतिप्रकारेणागतिः प्रतीयते । अतो ब्रूते-

ॐ यथेतमनेवं च ॐ ॥ 09-303 ॥

‘धूमादभ्रमभ्रादाकाशमाकाशाच्चन्द्रलोकं यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धोमो भूत्वाऽभ्रं भवत्यभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति’ इति काषायणश्रुतेर्यथागतमन्यथा च॥09॥

॥ इति यथेताधिकरणम् ॥ 09 ॥

ॐ चरणादिति चेन्न तदुपलक्षणार्थेति काष्णाजिनिः ॐ ॥ 09-304 ॥

‘तद्य इह रमणीयचरणा रमणीयां योनिमापद्यन्ते कपूयचरणाः कपूयाम्’ इति श्रुतेश्चरणफलमेव गमनागमनं न यज्ञादिकृतः ।

‘आचार इति सम्प्रोक्तः कर्माङ्गत्वेन शुद्धिदः । अशुद्धिदस्त्वानाचारश्चरणं तूभयं मतम्’ ॥

इति स्मृतेरिति चेन्न, यज्ञाद्युपलक्षणार्था चरणादिश्रुतिरिति काष्णाजिनिर्मन्यते ॥ 10 ॥

ॐ आनर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात् ॐ ॥ 11-305 ॥

तर्हि रमणीयाः कपूया इत्येव स्यात् । चरणशब्दस्यानर्थक्यमिति चेन्न। चरणापेक्षत्वाद्रमणीयत्वादेस्तज्ज्ञापनार्थत्वेनोपपत्तेः ॥ 11 ॥

ॐ सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादरिः ॐ ॥ 12-306 ॥

‘धर्मं चरत माऽधर्मम्’ इत्यादिप्रयोगात् सुकृतदुष्कृते एव चरणशब्दोक्ते इति बादरिर्मन्यते । तुशब्दात् स्वसिद्धान्तोऽपि स एवेति सूचयति।

‘तुशब्दस्तुविशेषे स्यात् स्वसिद्धान्तेऽवधारणे’ इति च नाममहोदधौ ॥ 12 ॥

॥ इति चरणाधिकरणम् ॥ 10 ॥

पुण्याकृतामेव गमनागमने नेतरेषामित्यत आह-

ॐ अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम् ॐ ॥ 13-307 ॥

‘तद्यइह शुभाकृतो ये वाऽशुभकृतस्तेऽशुभमनुभूयावर्तन्ते पुनः कर्म कुर्वन्ति पुनर्गच्छन्ति पुनरागच्छन्ति’ इति भाल्लवेयश्रुतौ ॥ 13 ॥

ॐ संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ॐ ॥ 14-308 ॥

संयमनमनुभूय केषांचिदारोहः केषांचिदवरोहः । तुशब्दोऽवधारणे ॥

‘सर्वे वा एतेऽशुभकृतः संयमने प्रपतन्ति तत्र ह ये परद्विषो गुरुद्विषः श्रुतिद्विषस्तदवमन्तारः शठा
मूर्खा इति ते वै ततोऽवरुह्यतमसि प्रपतन्ति नैवैत उत्तिष्ठन्तेऽपि कर्हिचिद्व्रं वा एतदित्याहुरथ येऽन्ये
ब्रह्मद्विषः स्तेनाः सुरापा इति ते वै तदनुभूयेमं लोकमनुप्रजन्ति’ इति कौण्ठरव्यश्रुतेः ॥ 04 ॥

ॐ स्मरन्ति च ॐ ॥ 15-309 ॥

‘गच्छन्ति पापिनः सर्वे नरकं नात्र संशयः ।
तत्र भुक्त्वा पतन्त्येव ये द्विषन्ति जनार्दनम् ।
महातमसि मग्नानां न तेषामुत्थितिः क्वचित् ।
इतरेषां तु पापानां व्युत्थानं विद्यतेऽपि च ।
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
इति सर्वत्र नियमः पञ्चकष्टे तु तत् सदा’ इत्यादि ॥ 15 ॥

॥ इति अनिष्टादिकार्यधिकरणम् ॥ 11 ॥

ॐ अपि सप्त ॐ ॥ 16-310 ॥

‘रौरवोऽथ महांश्चैव वह्निर्वैतरणी तथा ।
कुम्भीपाक इति प्रोक्तान्यनित्यनरकाणि तु ॥
तामिस्रश्चान्धतामिस्रो द्वौ नित्यौ सम्प्रकीर्तितौ ।
इति सप्तप्रधानानि बलीयस्तूत्तरोत्तरम् ।
एतानि क्रमशो गत्वैवारोहोऽथावरोहणम्’ इति च भारते ॥ 16 ॥

॥ इति सप्ताधिकरणम् ॥ 12 ॥

ईश्वरस्य नरकायुक्तेः ‘सर्वं विसृजति सर्वं विलापयति सर्वं रमयति सर्वं न रमयति सर्वं
प्रवर्तयत्यन्तरस्मिन् निविष्टः’
इति कौषारवश्रुतिविरोध इत्यतो वक्ति –

ॐ तत्रापि च तद्वापारादविरोधः ॐ ॥ 17-311 ॥

चशब्दाददुःखानुभवेन ।

‘स स्वर्गे स भूमौ स नरके सोऽन्धे तमसि प्रवृत्तिकृदेक एवानुविष्टो नासौ दुःखभुगीश्वरः प्रभुत्वात् सर्वं पश्यति सर्वं कारयति नासौ दुःखभुग्य एवं वेद’ इति पौत्रायणश्रुतेरविरोधः ।

‘नरकेऽपि वसन्तीशो नासौ दुःखभुगुच्यते ।

नीचोच्चतैव दुःखादेर्भोग इत्यभिधीयते ॥

नासौ नीचोच्चतां याति पश्यत्येव प्रभुत्वतः’ इति भागवततन्त्रे ॥ 17 ॥

॥ इति तद्व्यापाराधिकरणम् ॥ 13 ॥

‘अथैतयोः पथोर्न कतरेण च तानीमानि क्षुद्रमिश्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व भ्रियस्वेत्येतत्तृतीयं स्थानम्’ इति गतिस्वातन्त्र्यं भूतानां प्रतीयत इत्यत आह-

ॐ विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ॐ ॥ 18-312 ॥

विद्याकर्मापेक्षयैतद्वचनम् । तयोरपि प्रकृतत्वात् ।

‘विद्यापथः कर्मपथो द्वौ पन्थानौ प्रकीर्तितौ ।

तद्वर्जितस्त्रिधा याति तिर्यग्वा नरकं तमः’ इति च भारते ॥ 18 ॥

इति विद्याकर्माधिकरणम् ॥ 14 ॥

‘यत्र दुःखं सुखं तत्र सर्वत्रापि प्रतीयते ।

अपि नीचगतौ किञ्चित् किमु मानुषदेहिनः’

इति वचनान्महातमस्यपि सुखप्राप्तिरित्यत आह-

ॐ न तृतीये तथोपलब्धेः ॐ ॥ 19-313 ॥

‘अथाविद्वानकर्माऽवाग्च्छति त्रिधा ह वाऽवाग्गतिस्तिर्यग्यातना तम इति । द्वेवाव सुखानुवृत्ते, न तमः सुखानुवृत्तं केवलं ह्येवात्र दुःखं भवति’ इति श्रुतेर्न तृतीयावाग्गतौ सुखम् ॥ 19 ॥

ॐ स्मर्यतेऽपि च लोके ॐ ॥ 20-314 ॥

‘तिर्यक्षु नरके चैव सुखलेशो विधीयते ।

नान्धे तमसि मग्नानां सुखलेशोऽपि कश्चन’ इति भविष्यत्पर्वणि ।

लोकसिद्धं चैतत् । चशब्दाल्लोकसिद्धिरपि स्मार्तेत्याह ।

‘अतिप्रिये यथा राजा न दुःखं सहते क्वचित् ।

अत्यप्रिये सुखमपि तथैव परमेश्वरः' इति हि ब्राह्मे ॥ 20 ॥

ॐ दर्शनाच्च ॐ ॥ 21-315 ॥

'नारायणप्रसादेन समिद्धज्ञानचक्षुषा ।
अत्यन्तदुःखसल्लीनान् निशेषसुखवर्जितान् ॥
नित्यमेव तथाभूतान् विमिश्रांश्च गणान् बहून् ।
निरस्ताशेषदुःखांश्च नित्यानन्दैकभागिनः ॥
अपश्यत् त्रिविधान् ब्रह्मा साक्षादेव चतुर्मुखः'

इति दर्शनवचनाच्च पाद्रे ॥ 21 ॥

ॐ तृतीये शब्दावरोधः संशोकजस्य ॐ ॥ 22-316 ॥

तृतीये तृतीयतमस श्रवणादेव शब्दानुसारेण संशोकजमोहप्राप्तिः ॥ 22 ॥

ॐ स्मरणाच्च ॐ ॥ 23-317 ॥

'महातमस्त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वं मध्यं तथाऽधरम् ।
श्रवणादेव मूर्च्छादिरधरस्य यतो भवेत् ॥
तस्मान्न विस्तरेण्यैतत् कथ्यते राजसत्तम' इति कौर्मे ॥ 23 ॥

॥ इति महातमोऽधिकरणम् (नतृतीयाधिकरणम्) ॥ 15 ॥

'धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति' इत्याद्यन्यभावः श्रूयते । स कथमित्यतो ब्रवीति-

ॐ तत्स्वाभाव्यापत्तिरुपपत्तेः ॐ ॥ 24-318 ॥

धूमादिषु प्रविश्य तद्गतौ गतिः स्थितौ स्थितिरित्यादिरेव तद्भावापत्तिः । न ह्यन्यस्यान्यभावो युज्यते ।
न च तत्पदप्राप्तिः । गारुडे च-

धूमादिभावप्राप्तिश्च तद्गतौ गतिरेव तु ।
स्थितौ स्थितिः प्रवशश्च लघुत्वादिस्तथैव च ॥
न ह्यन्यस्यान्यथाभावो न च तत्पदमिष्यते ।
विद्यागम्यं पदं यस्मात् न तत्प्राप्यं हि कर्मणा ॥
एकदेशस्वभावेन वागभेदाऽपि युज्यते ।

यथा जीवः परं ब्रह्म ब्रह्मेदं जगदित्यपि' इति ॥ 24 ॥

॥ इति तत्स्वाभाव्याधिकरणम् ॥ 16 ॥

बहुस्थानगमनात् कल्पान्तमप्येवं स्यादित्यत आह-

ॐ नातिचिरेण विशेषात् ॐ ॥ 25-319 ॥

'तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत् ते रमणीयां योनिमापद्यन्ते' इति विशेषान्नातिचिरेण ॥

स्वर्गाल्लोकादवाक् प्राप्तो वत्सरात्पूर्वमेव तु ।

मातुः शरीरमाप्नोति पर्यटन् यत्र तत्र च' इति च नारदीये ॥ 25 ॥

॥ इति नातिचिरेणाधिकरणम् (अचिरप्राप्त्याधिकरणम्) ॥ 17 ॥

'त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते'

इति श्रवणादनर्थफलत्वं यज्ञादेरित्यतो वक्ति-

ॐ अन्याधिष्ठिते पूर्ववदभिलापात् ॐ ॥ 26-320 ॥

अन्याधिष्ठिते व्रीह्यादिशरीरे प्रवेशः । न तु भोगोऽस्य । 'धूमोभूत्वाऽभ्रं भवति' इत्यादिपूर्वोक्तिवत् ॥

'सोऽवाग्गतः स्थावरान् प्रविश्याभोगेनैव व्रजन् स्थूलं शरीरमेति स्थूलाच्छरीराद्भोगाननुभुङ्के'

इत्यभिलापात् कौषारवश्रुतौ ।

'स्वर्गादवाग्गतो देही व्रीह्यादीतरदेहगः ।

अभुञ्जस्तु क्रमेणैव देहमाप्नोति कालतः' इति वाराहे ॥ 26 ॥

ॐ अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् ॐ ॥ 27-321 ॥

हिसारूपत्वात् पापस्यापि सम्भवाद्दुःखं च भवत्विति चेन्न। शब्दविहितत्वात् ॥

'हिंसा त्ववैदिका या तु तयाऽनर्थो ध्रुवं भवेत्।

वेदोक्तया हिंसया तु नैवानर्थः कथञ्चन' इति वाराहे ॥ 27 ॥

॥ इति अन्या(धिष्ठिता)धिकरणम् ॥ 18 ॥

'स्वर्गादवाग्गतश्चापि मातुरेवोदरं व्रजेत्' इति वचनात्

'य एव गृही भवति यो वा रेतः सिञ्चति तमेवानुविशति'

इति श्रुतिः कथमित्यत आह-

ॐ रेतःसिग्योगोऽथ ॐ ॥ 28-322 ॥

‘ततो रेतस्सिचमेवानुप्रविशत्यथ मातरमथ प्रसूयते स कर्म कुरुते’

इति कौण्ठरव्यश्रुतेः पितरमेव प्रथमतो विशति। मातृप्राप्तेः पश्चादपि भाव्यत्वात् ॥ 28 ॥

॥ इति रेतोऽधिकरणम् ॥ 19 ॥

‘देहं गर्भस्थितं कापि प्रविशेत् स्वर्गतो गतः’

इति वचनात् पश्चादेव प्रविशतीत्यत आह-

ॐ योनेः शरीरम् ॐ ॥ 29-323 ॥

पितृशरीरान्मातृयोनिमनुप्रविश्य तत एव शरीरमाप्नोति ।

‘दिवः स्थासून गच्छति स्थासुभ्यः पितरं पितुर्मातरं मातुः शरीरं शरीरेण जायत इति सम्मितम् ।

अथासम्मितं स्थासुभ्यो जायते पितुर्मातुरन्तरे वा गर्भे वा बहिर्वा’ इति पौष्यायणश्रुतेः ॥

‘स्थावराणि दिवः प्राप्तः स्थावरेभ्यश्च पूरुषम् ।

पुरुषात् स्त्रियमापन्नस्ततो देहं यथाक्रमम् ॥

देहेन जायते जन्तुरिति सामान्यतो जनिः ।

विशेषजननं चापि प्रोच्यमानं निबोध मे ॥

स्थासुष्वथापि पुरुषे प्रमादायामथापि वा ।

गर्भे वा बहिरेवाथ क्वचित् स्थानान्तरेषु च’ इति ब्राह्मे ॥ 29 ॥

॥ इति योन्यधिकरणम् ॥ 20 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्र भाष्ये तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

03-01 ॥

द्वितीयः पादः ॥ 03-02 ॥

भक्तिरस्मिन् पाद उच्यते। भक्त्यर्थं भगवन्महिमोक्तिः।

ॐ सन्ध्ये सृष्टिराह हि ॐ ॥ 01-324 ॥

न स्वप्नोऽपि तं विना प्रतीयते ।

‘न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ ।

रथान् रथयोगान् पथः सृजते’ इत्यादि श्रुतेः ॥ 01 ॥

ॐ निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च ॐ ॥ 02-325 ॥

‘य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्ममाणः’ इति च ।

‘एतस्माद्येव पुत्रो जायत एतस्माद्वातैतस्माद्धार्या यदेनं पुरुषमेष स्वप्नेनाभिहन्ति’ इति गौपवनश्रुतिश्च

॥ 02 ॥

केन साधनेन ?-

ॐ मायामात्रं तु कात्स्न्येनानभिव्यक्त स्वरूपत्वात् ॐ ॥03-326 ॥

अनादिमनोगतान् संस्कारान् स्वेच्छामात्रेण प्रदर्शयति नान्येन साधनेन, सम्यगनभिव्यक्तत्वात् ।

ब्रह्माण्डे च –

‘मनोगतांस्तु संस्कारान् स्वेच्छया परमेश्वरः ।

प्रदर्शयति जीवाय स्वप्न इति गीयते ॥

यदन्यथात्वं जाग्रत्त्वं सा भ्रान्तिस्तत्र तत्कृता ।

अनभिव्यक्तरूपत्वान्नान्यसाधनजं भवेत्’ इति ॥ 03 ॥

ॐ सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ॐ ॥ 04-327 ॥

साधनांतराभावेऽपि भावाभावसूचकत्वेन चेश्वरो दर्शयति ।

‘यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेऽभिपश्यति ।

समृद्धिं तत्र जानीयात् तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने’ इत्यादिश्रुतेः ।

हिशब्दादर्शनाच्च ।

‘यद्वाऽपि ब्राह्मणो ब्रूयाद्देवता वृषभोऽपि वा ।

स्वप्नस्थमथवा राजा तत् तथैव भविष्यति’ ॥

इत्याद्याचक्षते च स्वप्नविधो व्यासादयः ॥ 04 ॥

॥ इति सन्ध्याधिकरणम् ॥ 01 ॥

ॐ पराभिध्यानात् तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ ॐ ॥ 05-328 ॥

बन्धमोक्षप्रदत्वात् स एव स्वप्तिरस्कर्ता ।

‘स्वप्नादिबुद्धिकर्ता च तिरस्कर्ता स एव च ।

तदिच्छया यतो ह्यस्य बन्धमोक्षौ प्रतिष्ठितौ’ इति कौर्मे ॥ 05 ॥

॥ इति पराभिध्यानाधिकरणम् ॥ 02 ॥

ॐ देहयोगाद्वासोऽपि ॐ ॥ 06-329 ॥

देहयोगेन वासो जाग्रदपि तत एव ।

‘स एव जागरिते स्थापयति स स्वप्ने स प्रभुस्तुराषाट् स एको बहुधा भवति’ इति कौण्ठरव्यश्रुतेः

॥ 06 ॥

॥ इति देहयोगाधिकरणम् ॥ 03 ॥

ॐ तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि ह ॐ ॥ 07-330 ॥

जाग्रत्स्वप्नाभावः सुप्तिः नाडीस्थे परमात्मनि ।

‘आसु तदा नाडीषु सुप्तो भवति’

‘सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति’ इति श्रुतेः ॥ 07 ॥

॥ इति तदभावाधिकरणम् ॥ 04 ॥

ॐ अतः प्रभोधोऽस्मात् ॐ ॥ 08-331 ॥

यतस्तस्मिन् सुप्तिः ॥

‘एष एव सुप्तं प्रभोधयत्येतस्माज्जीव उत्तिष्ठत्येष प्रमातै ष परमः’ इति कौण्डिन्यश्रुतिः ॥ 08 ॥

॥ इति प्रभोधाधिकरणम् ॥ 05 ॥

ॐ स एव च कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः ॐ ॥ 09-332 ॥

न च केषांचित् स्वप्नादिकर्ता न तु सर्वेषामिति ।

‘एष ह्येव साधु कर्म कारयति’ इति कर्मण्यवधारणात् ॥

‘प्रदर्शकस्तु सर्वेषां स्वप्नादेरेक एव तु ।

परमः पुरुषो विष्णुस्ततोऽन्यो नास्ति कश्चन' इत्यनुसारिस्मृतेश्च ॥ 'एष स्वप्नान् दर्शयत्येष प्रबोधयथ्यैष एव परम आनन्दः' -इति च श्रुतिः ॥ आत्मानमेव लोकमुपासीत' इति च विधिः ॥ 09 ॥
॥ इति कर्मानुस्मृत्यधिकरणम् ॥ 06 ॥
ॐ मुग्धेऽर्धसम्पत्तिः परिशेषात् ॐ ॥ 10-333 ॥
मोहावस्थायां परमेश्वरेऽर्धप्राप्तिर्जीवस्य । 'हृदयस्थात् पराज्जीवो दूरस्थो जाग्रदेष्यति । समीपस्थस्तथा स्वप्नं स्वपित्यस्मिन् लयं व्रजन् ॥ यत एवं त्रयोऽवस्था मोहस्तु परिशेषतः । अर्धप्राप्तिरिति ज्ञेयो दुःखमात्रप्रतिस्मृतेः' इति वाराहे ॥ सोऽपि तत एवेति सिद्धम् । 'मूर्च्छा प्रबोधनं चैव यत एव प्रवर्तते । स ईशः परमो ज्ञेयः परमानन्दलक्षणः' इति हि कौर्मे ॥ 10 ॥
॥ इति मुग्धप्राप्त्यधिकरणम् (सम्पत्त्यधिकरणम्) ॥ 07 ॥
स्वानापेक्षया, परमात्मनो भेदादनुग्राह्यानुग्राहकभाव इत्यत आह- ॐ न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ॐ ॥ 11-334 ॥
स्थानापेक्षयाऽपि परमात्मनो न भिन्नं रूपम् । 'सर्वेषु भूतेष्वेतमेव ब्रह्मेत्याचक्षते' इति श्रुतिः । 'एकरूपः परो विष्णुः सर्वत्रापि न संशयः । ऐश्वर्याद्रूपमेकं च सूर्यवद्बुधेयते' इति मात्स्ये ॥ 'प्रतिदृशमिव नैकधाऽर्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः' इति च भागवते ॥ 11 ॥
ॐ न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ॐ ॥ 12-335 ॥

‘कार्यकारणबद्धौ ताविष्येते विश्वतेजसौ ।

प्राज्ञः कारणबद्धस्तुद्धौ तु तुर्ये न सिद्ध्यतः’ ॥

इति भेदवचनान्नेति चेन्न ।

‘एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः’ ।

‘अयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्’ ।

‘अयं वै हरयोऽयं वै दश च सहस्राणि बहूनि चानन्तानि च ।

तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमन्तरमबाह्यमयामात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशासनम्’ इति

प्रत्येकमभेदवचनात् ॥ 12 ॥

ॐ अपि चैवमेके ॐ ॥ 13-336 ॥

एवमभेदेनैव । चशब्दादनन्तरूपत्वं चैके शाखिनः पठन्ति ।

‘अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः ।

ओङ्कारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः’ इति ।

अभेदेऽपि भेदव्यपदेशः स्थानभेदादैश्वर्ययोगाच्च युज्यते ।

ब्रह्मतर्के च-

‘बद्धो बन्धादिसाक्षित्वाद्भिन्नो भिन्नेषु संस्थितेः ।

निर्दोषाद्व्यरूपोऽपि कथ्यते परमेश्वरः’ इति ॥ 13 ॥

॥ इति स्थान(तोऽप्य)भेदाधिकरणम् ॥ 08 ॥

रूपवत्त्वादनित्यत्वमित्यतो वक्ति-

ॐ अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् ॐ ॥ 14-337 ॥

प्रकृत्यादिप्रवर्तकत्वेन तदुत्तमत्वान्नैव रूपवद्ब्रह्म । हि शब्दाद्‘अस्थूलमनणु’ इत्यादिश्रुतेश्च ।

‘भौतिकानि हि रूपाणि भूतेभ्योऽसौ परो यतः ।

अरूपवानतः प्रोक्तः क्व तदव्यक्ततः परे’ इति च मात्स्ये ॥ 14 ॥

ॐ प्रकाशवच्चावैयर्थ्यम् ॐ ॥ 15-338 ॥

‘यदा पश्यः पश्यते रुग्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।

‘श्यामाच्चबलं प्रपद्ये’सुवर्णज्योतिः’

इत्यादिश्रुतीनां च न वैयर्थ्यम् ।

विलक्षणरूपवत्वात् । यथा चक्षुरादिप्रकाशे विद्यमानेऽपि वैलक्षण्यादप्रकाशादिव्यवहारः ॥ 15 ॥

ॐ आह च तन्मात्रम् ॐ ॥ 16-339 ॥

वैलक्षण्यं चोच्यते रूपस्य विज्ञानानन्दमात्रत्वं’ऐकात्म्यप्रत्ययसारम्’ इति ।

आनन्दमात्रमजरं पुराणमेकं संतं बहुधा दृष्यमानम् ।

तमात्मस्थं योऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्’

इति चतुर्वेदशिखायाम् ॥ 16 ॥

ॐ दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते ॐ ॥ 17-340 ॥

दर्शयति चानन्दस्य रूपत्वं

‘तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति’ इति ॥

‘शुद्धस्फटिकसङ्काशं वासुदेवं निरञ्जनम् ।

चिन्तयीति यतिर्नान्यं ज्ञानरूपादृते हरेः’ इति च मात्स्ये ॥ 17 ॥

॥ इति अरूपाधिकरणम् ॥ 09 ॥

ॐ अत एव चोपमा सूर्यकादिवत् ॐ ॥ 18-341 ॥

यस्मादेवं परमेश्वरस्वरूपाणां मिथो न कश्चिद्वेदः अतः सादृश्याज्जीवस्यापि तथा स्यादिति तस्य

प्रतिबिम्बत्वमुक्त्वा च शब्देन भेदं दर्शयति ।

‘रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव’ ।

‘बहवः सूर्यका यद्वत् सूर्यस्य सदृशा जले ।

एवमेवात्मका लोके परात्मसदृशा मताः’ इत्यादि ॥

अथ एव भिन्नत्वतदधीनत्वतत्सादृश्यैरेव सूर्यकाद्युपमा, नोपाध्यधीनत्वादिना ॥ 18 ॥

॥ इति उपमाधिकरणम् ॥ 10 ॥

नित्यसिद्धत्वात् सादृश्यस्य नित्यानन्दज्ञानादेर्न भक्तिज्ञानादिना प्रयोजनमित्यतो ब्रवीति-

ॐ अम्बुवदग्रहणात् तु न तथात्वम् ॐ ॥ 19-342 ॥

अम्बुवद् स्नेहेन । ग्रहणं ज्ञानम् । भक्तिं विना न तत्सादृश्यं सम्यगभिव्यज्यते ।

‘यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्’

इति हि श्रुतिः ।

‘महित्वबुद्धिर्भक्तिस्तु स्नेहपूर्वाऽभिधीयते ।

तथैव व्यज्यते सम्यग्जीवरूपं सुखादिकम्’ इति पाद्रे ॥ 19 ॥

॥ इति अम्बुवदधिकरणम् ॥ 11 ॥

ॐ वृद्धिहासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवम् ॐ ॥ 20-343 ॥

तस्य च भक्तिज्ञानदेर्वृद्धिहासभाक्त्वं विद्यते । ब्रह्मादीनामुत्तमानां सर्वेषां भक्तत्वेऽन्तर्भावात् । एवं भक्त्यादिविशेषाङ्गीकारादेवेश्वरस्य ब्रह्मादीनन्यान् प्रति च सामञ्जस्यं भवति ।

‘साधनस्योत्तमत्वेन साध्यं चोत्तममाप्नुयुः ।

ब्रह्मादयः क्रमेणैव यथाऽऽनन्दश्रुतौ श्रुताः’ इति च ब्राह्मे ॥ 20 ॥

कुतः? –

ॐ दर्शनाच्च ॐ ॥ 21-344 ॥

‘अथात आनन्दस्य मीमांसा भवति’ इत्यारभ्य ब्रह्मपर्यन्तेषु सुखे विशेषदर्शनात् । चशब्दात् स्मृतिः

यथा भक्तिविशेषोऽत्र दृष्यते पुरुषोत्तमे ।

तथा मुक्तिविशेषोऽपि ज्ञानिनां लिङ्गभेदने’ इति ॥ 21 ॥

॥ इति वृद्धिहासाधिकरणम् ॥ 12 ॥

सृष्टिसंहारकर्तृत्वमेवास्य न पालकत्वं स्वतः सिद्धेरित्यत आह-

ॐ प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः ॐ ॥ 22-345 ॥

उक्तं सृष्टिसंहारकर्तृत्वमात्रं प्रतिषिध्य ततोऽधिकं ब्रवीति

‘नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति’ इति ।

च शब्दात् स्मृतिश्च ।

‘सृष्टिं च पालनं चैव संहारं नियमं तथा ।

एक एव करोतीशः सर्वस्य जगतो हरिः’ इति ब्रह्माण्डे ॥ 22 ॥

॥ इति पालकत्वाधिकरणम् (प्रकृत्यधिकरणम्) ॥ 13 ॥

परमात्मापरोक्ष्यं च तत्प्रसादादेव न जीवशक्त्येति वक्तुमुच्यते-

ॐ तदव्यक्तमाह हि ॐ ॥ 23-346 ॥

अव्यक्तमेव तद्ब्रह्म स्वतः ।

‘अरूपमक्षरं ब्रह्म सदाऽव्यक्तं च निष्फलम्।

यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरानन्दश्चाक्षयो भवेत्’ इति कौण्ठरव्यश्रुतिः ॥ 23 ॥

ॐ अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॐ ॥ 24-347 ॥

आराधनेऽप्यव्यक्तमेव । ज्ञानिप्रत्यक्षेणेतरेषामतिसूक्ष्मत्वलिङ्गादनुमानेन।

‘न तमाराधयित्वाऽपि कश्चिद्वक्तीकरिष्यति ।

नित्याव्यक्तो यतो देवः परमात्मा सनातनः’ इति ब्रह्मवैवर्ते ॥ 24 ॥

नित्याव्यक्तरूपेण तथैव तिष्ठति। व्यक्तं किञ्चिद्रूपं गृहीत्वा दृश्यते ।

यथाऽग्न्यादयस्तन्मात्रारूपेणादृश्या अपि स्थूलरूपेण दृश्यन्त एवमिति चेन्न।

ॐ प्रकाशवच्चैवैशेष्यम् ॐ ॥ 25-348 ॥

अग्न्यादिवत् स्थूलसूक्ष्मत्वविशेषाभावात्।

‘नासौ सूक्ष्मो न स्थूलः पर एव स भवति तस्मादाहुः परम इति’

इति माण्डव्यश्रुतेः ।

‘स्थूलसूक्ष्मविशेषोऽत्र न क्वचित् परमेश्वरे ।

सर्वत्रैकप्रकारोऽसौ सर्वरूपेष्वजो यतः’ इति च गारुडे ॥

‘अव्यक्तव्यक्तभावौ च न क्वचित् परमेश्वरे ।

सर्वत्राव्यक्तरूपोऽयं यत एव जनार्दनः’ इति च कौर्मे ॥ 25 ॥

तर्हि किं यत्नेनेत्यत आह-

ॐ प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् ॐ ॥ 26-349 ॥

विषयभूते तस्मिन्नेव श्रवाणाध्यभ्यासात् प्रकाशश्च भवति ।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोदव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'

इति श्रुतेः ॥ 26 ॥

नित्याव्यक्तस्य कथं प्रकाशः इत्यत उच्यते-

ॐ अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम् ॐ ॥ 27-350 ॥

उभयत्र प्रमाणभावात् तत्प्रसादादेव प्रकाशो भवति ।

'तस्याभिध्यानाद्योजनात् तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः'

इति लिङ्गात् ।

युज्यते च तस्यानन्तशक्तित्वात् ।

नित्याव्यक्तोऽपि भगवानीक्ष्यते निजशक्तिः ।

तमृते परमात्मानं कः पश्येतामितं प्रभुम्'

इति नारायणाध्यात्मे ॥ 37 ॥

॥ इति अव्यक्ताधिकरणम् ॥ 14 ॥

स्वरूपेणानन्दादिना कथमानन्दित्वादिरित्यत उच्यते-

ॐ उभयव्यपदेशात् त्वहिकुण्डलवत् ॐ ॥ 28-351 ॥

'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्' । 'अथैष एव परम आनन्दः'

इत्युभयव्यपदेशादहिकुण्डलवदेव युज्यते । यथाऽहिः कुण्डली कुण्डलं च । तुशब्दात्

केवलश्रुतिगम्यत्वं दर्शयति ॥ 28 ॥

ॐ प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ॐ ॥ 29-352 ॥

यथाऽऽदित्यस्य प्रकाशत्वं प्रकाशित्वं च, एवं वा दृष्टान्तः । तेजोरूपत्वाद्ब्रह्मणः ॥ 29 ॥

ॐ पूर्ववद्वा ॐ ॥ 30-353 ॥

यथैक एव कालः पूर्वं इत्यवच्छेदकोऽवच्छेद्यश्च भवति । अतिसूक्ष्मत्वापेक्षयैष दृष्टान्तः । स्थूलमतीनां

च प्रदर्शनार्थमहिकुण्डलदृष्टान्तः ।

प्रकाशवत् कालवद्वा यथाऽङ्गे शयनादिकम् । ब्रह्मणश्चैव मुक्तानामानन्दोऽभिन्न एव तु' इति नारायणाध्यात्मे । 'आनन्देन त्वभिन्नेन व्यवहारः प्रकाशवत् । कालवद्वा यथा कालः स्वावच्छेदकतां व्रजेत्' इति ब्राह्मे ॥ 30 ॥
ॐ प्रतिषेधाच्च ॐ ॥ 31-354 ॥
'एकमेवाद्वितीयम्' । 'नेह नानाऽस्ति किञ्चन' इति भेदस्य ॥ 31 ॥
॥ इति उभयव्यपदेशाधिकरणम् (अहिकुण्डलाधिकरणम्) ॥ 15 ॥
ॐ परमतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशोभ्यः ॐ ॥ 32-355 ॥
न चानन्दादित्वाल्लोकानन्दादिवत् । 'एष सेतुर्विधृति' 'य एष आनन्दः परस्य' 'एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य' इति सेतुत्वं ह्युच्यते. 'यतो वाचो निवर्तन्ते' इत्युन्मानत्वम् । 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति संबन्धः । 'अन्यज्ञानं तु जीवानामन्यज्ज्ञानं परस्य च । नित्यानन्दाव्ययं पूर्णं परज्ञानं विधीयते' इति भेदः ॥ अतोऽलौकिकत्वात् परमेव ब्रह्मानन्दादिकम् ॥ 32 ॥
ॐ दर्शनात् तु ॐ ॥ 33-356 ॥
दर्शनादेवचान्यानन्दादीनाम् । 'अदृष्टमव्यवहार्यमव्यपदेश्यं सुखं ज्ञानमोजो बलमिति ब्रह्मणस्तस्माद्ब्रह्मेत्याचक्षते तस्माद्ब्रह्मेत्याचक्षते' इति कौण्डिन्यश्रुतिः ॥ 33 ॥ अप्रसिद्धस्य कथमानन्द इत्यादिव्यपदेश इत्यतो वक्ति -
ॐ बुद्ध्यर्थः पादवत् ॐ ॥ 34-357 ॥
जीवेश्वरसम्बन्धज्ञापनार्थमप्रसिद्धोऽपि पादो यथा पादशब्देन व्यपदिश्यते' पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इति तथा । 'अलौकिकोऽपि ज्ञानादिस्तच्छब्दैरेव भण्यते । ज्ञापनार्थाय लोकस्य यथा राजेव देवराट्' इति च पादो ॥ 34 ॥

॥ इति परानन्दा(परमता)धिकरणम् ॥ 16 ॥

परानन्दमात्रत्वे कथं ब्रह्माद्यानन्दादीनां विशेष इत्यत उच्यते -

ॐ स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत् ॐ ॥ 35-358 ॥

यथाऽऽदित्यस्य दर्पणादिस्थानविशेषात् प्रतिबिम्बविशेष एवमानन्दादेरपि ।

‘ब्रह्मादिगुणवैशेष्यादानन्दः परमस्य च ।

प्रतिबिम्बत्वमायाति मध्योच्चादिविशेषतः’ इति वाराहे ॥ 35 ॥

ॐ उपपत्तेश्च ॐ ॥ 36-359 ॥

‘ऐश्वर्यात् परमाद्विष्णोर्भक्त्यादीनामनादितः ।

ब्रह्मादीनां सूपपन्ना ह्यानन्दादेर्विचित्रता’ इति हि पाद्मे ॥ 36 ॥

॥ इति स्थानविशेषाधिकरणम् ॥ 17 ॥

ध्यानकाले यच्चित्ते दृश्यते तदेव ब्रह्मरूपम् । अतः कथमव्यक्ततेत्यत आह-

ॐ तथाऽन्यत् प्रतिषेधात् ॐ ॥ 37-360 ॥

यथा जीवानन्दादेरन्यद्ब्रह्म तथोपासाकृतादपि ।

‘यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते’ इति प्रतिषेधात् ।

‘पश्यन्ति परमं ब्रह्म चित्ते यत्प्रतिबिम्बितम् ।

ब्रह्मैव प्रतिबिम्बे यदतस्तेषां फलप्रदम् ॥

तदुपासनं च भवति प्रतिमोपासनं यथा ।

दृश्यते त्वपरोक्षेण ज्ञानेनैव परं पदम् ।

उपासना त्वापरोक्ष्यं गमयेत् तत्प्रसादतः’ इति च ब्रह्मतर्के ॥ 37 ॥

॥ इति प्रतिषेधाधिकरणम् (तथान्यत्वाधिकरणम्) ॥ 18 ॥

देशकालान्तरेऽन्यतोऽपि सृष्ट्याधिर्युक्तेत्यतो ब्रूते-

ॐ अनेन सर्वगतत्वमायामयशब्दादिभ्यः ॐ ॥ 38-361 ॥

सर्वदेशकालवस्तुष्वनेनैव सृष्ट्यादिकं प्रवर्तते ।
‘एष सर्व एष सर्वगत एष ईश्वर एषोऽचिन्त्य एष परमः’
इति भाल्लवेयश्रुतिः
‘सर्वत्र सर्वमेतस्मात् सर्वदा सर्ववस्तुषु । स्वरूपभूतया नित्यशक्त्या मायाख्यया यतः ॥ अतो मायामयं विष्णुं प्रवदन्ति सनातनम्’
इति चतुर्वेदशिखायाम् ॥
आदिशब्दादन्यत्र प्रमाणाभावाच्च ॥ 38 ॥
॥ इति सर्वगतत्वाधिकरणम् ॥ 19 ॥
कर्मापेक्षत्वात् फलदानस्य तदेव ददातीति न वाच्यम् । कुतः ?-
ॐ फलमत उपपत्तेः ॐ ॥ 39-362 ॥
अत एवेश्वरात् फलं भवति । न ह्यचेतनस्य स्वतः प्रवृत्तिर्युज्यते ॥ 39 ॥
ॐ श्रुतत्वाच्च ॐ ॥ 40-363 ॥
‘विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणम्’ इति ॥ 40 ॥
ॐ धर्मं जैमिनिरत एव ॐ ॥ 41-364 ॥
यतः फलं तदेव कर्मेश्वराद्भवति । ‘एष ह्येव साधु कर्म कारयति’ इति श्रुतेरिति जैमिनिः ॥ 41 ॥
ॐ पूर्वं तु बादरायणो हेतु व्यपदेशात् ॐ ॥ 42-365 ॥
परस्य कर्मणश्चोभयोः फलकारणत्वेऽपि न कर्म परप्रवर्तकम् । पर एव कर्मप्रवर्तकः । ‘पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापम्’ इति हेतुव्यपदेशात् । ‘द्रव्यं कर्म च कालश्च’ इति च ॥ 42 ॥
॥ इति फलदानाधिकरणम् ॥ 20 ॥
॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्य विरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः
॥ 03-02
तृतीयः पादः ॥ 03-03 ॥

उपासनाऽस्मिन् पाद उच्यते। सर्वपरिज्ञानं प्रथमत उच्यते-

ॐ सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात् ॐ ॥ 01-366 ॥

अन्तो निर्णयः । 'उभयोरपि दृष्टोऽन्तः' इति वचनात् । सर्ववेद निर्णयोत्पाद्यज्ञानं ब्रह्म । 'आत्मेत्येवोपासीत' इत्यादिविधीनां तदुक्त युक्तीनां चाविशिष्टत्वात् ॥ 01 ॥

ॐ भेदान्नेति चेदेकस्यामपि ॐ ॥ 02-367 ॥

'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि प्रतिशाखमुक्तिभेदान्नैकाधिकारिविषयाः सर्वशाखा इति चेन्न । एकस्यामपि शाखायां 'आत्मेत्येवोपासीत' 'ॐ खं ब्रह्म' इत्यादिभेददर्शनात् ॥ 02 ॥

ॐ स्वाध्यायस्य तथात्वेन हि समाचारेऽधिकाराच्च ॐ ॥ 03-368 ॥

'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इति सामान्यविधेः । हिशब्दात्

वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना' इति स्मृतेः ।

'सर्ववेदोक्तमार्गेण कर्म कुर्वीत नित्यशः ।

आनन्दो हि फलं यस्माच्छाखाभेदो ह्यशक्तिजः ॥

सर्वकर्मकृतौ यस्मादशक्ताः सर्वजन्तवः ।

शाखाभेदं कर्मभेदं व्यासस्तस्मादचीकृपत्'

इति समाचारे सर्वेषामधिकाराच्च ॥ 03 ॥

ॐ सलिलवच्च तन्नियमः ॐ ॥ 04-369 ॥

यथा सर्वं सलिलं समुद्रं गच्छत्येवं सर्वाणि वचनानि ब्रह्मज्ञानार्थानीति नियमः । आग्नेये च -

'यथा नदीनां सलिलं शक्ये सागरगं भवेत् ।

एवं वाक्यानि सर्वाणि पुंशक्त्या ब्रह्मवित्तये' इति ॥ 04 ॥

ॐ दर्शयति च ॐ ॥ 05-370 ॥

'सर्वैश्च वेदैः परमो हि देवो जीज्ञास्योऽसौ नाल्पवेदैः प्रसिद्ध्येत् ।

तस्मादेनं सर्ववेदानदीत्य विचार्य च ज्ञातुमिच्छेन्मुमुक्षुः'

इति चतुर्वेदशिखायाम् ।

‘सर्वान् वेदान् सेतिहासान् सपुराणान् सयुक्तिकान् ।

सपञ्चरात्रान् विज्ञाय विष्णुर्ज्ञेयो न चान्यथा’ इति ब्रह्मतर्क ॥ 05 ॥

॥ इति सर्ववेदा(न्तप्रत्यया)धिकरणम् ॥ 01 ॥

सर्वैर्वेदैर्ज्ञेयो नोपास्योऽशक्यत्वादित्यत आह-

ॐ उपसंहारोऽर्थाभेदाद्विधिशेषवत् समाने च ॐ ॥ 06-371 ॥

सर्ववेदोक्तान् गुणान् दोषाभावांश्चोपसंहृत्यैव परमात्मोपास्यः ।

‘उपास्य एकः परतः परो यो वेदैश्च सर्वैः सह चेतीहासैः ।

सपञ्चरात्र्यै सपुराणैश्च देवः सर्वगुणैस्तत्र तत्र प्रतीतैः’

इति भाल्लवेयश्रुतिः ।

आग्नेये च-

विधिशेषाणि कर्माणि सर्ववेदोदितान्यपि ।

यथा कार्याणि सर्वैश्च सर्वाण्येवाविशेषतः ॥

एवं सर्वगुणान् सर्वदोषाभावांश्च यत्नतः ।

योजयित्वैव भगवानुपास्यो नान्यथा क्वचित् इति ॥

समानविषये चोपसंहारः । न तु‘सोऽरोदीत्’ इत्यादिनाम्

गुणैरेव स तूपास्यो नैव दोषैः कथञ्चन ।

गुणैरपि न तूपास्यो यो पूर्णत्वविरोधिनः’ इति बृहत्तन्त्रे ॥ 06 ॥

ॐ अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्नाविशेषात् ॐ ॥ 07-372 ॥

‘आत्मेत्येवैपासीत्’ इतिशब्दादुपसंहारस्यान्यथात्वमिति चेन्न । एते गुणा नोपास्य इति विशेषवचनाभावात् ।

‘सर्वैर्गुणैरेक एवेशिताऽसावुपासितव्यो न तु दोषैः कदाचित्’

इति विशेषवचनाच्च

आत्मेत्यवधारणमनात्मत्वनिवृत्त्यर्थम् ॥ 07 ॥

ॐ न वा प्रकरणभेदात् परोवरीयस्त्वादिवत् ॐ ॥ 08-373 ॥

प्रकरणभेदान्नवोपसंहारः कार्यः । परोवरीयस्त्वादिषु तावदेव ह्युक्तम् ॥ 08 ॥

ॐ सङ्ज्ञातश्चेत् तदुक्तमस्ति तु तदपि ॐ ॥ 09-374 ॥

सर्वविद्या'उत्त्वासोऽहं नामविदेवास्मि नात्मवित्' इति वचनात् सर्वस्य ब्रह्मनामत्वात् तदुपसंहारः
कार्यः ।

'नामत्वात् सर्वविद्यानां गुणानामुपसंहति ।

कार्यैव ब्रह्मणि परे नात्र कार्या विचारणा' इति च ब्रह्मतर्के ॥

इति चेत् सत्यम् । उक्तो ह्युपसंहारः । तत्प्रमाणमप्यस्त्येव ।

'नाम वा एता ब्रह्मणः सर्वविद्यास्तस्मादेकः सर्वगुणैर्विचिन्त्यः'

इति कौण्डिन्यश्रुतौ ॥ 09 ॥

॥ इति उपसंहाराधिकरणम् ॥ 2 ॥

ॐ प्राप्तेश्च समञ्जसम् ॐ ॥ 10-375 ॥

युज्यते चोपसंहारोऽनुपसंहारश्च योग्यताविशेषात् ।

'गुणैःसर्वैरुपास्योऽसौ ब्रह्मणा परमेश्वरः ।

अन्यैर्यथाक्रमं चैव मानुषैः कैश्चिदेव तु' इति भविष्यत्पर्वणि ॥ 10 ॥

॥ इति प्राप्तेधिकरणम् ॥ 03 ॥

ॐ सर्वाभेदादन्यत्रेमे ॐ ॥ 11-376 ॥

सर्वगुणयुक्तत्वेनोपासनादन्यत्रैव फले ब्रह्मादयो भवन्ति ।

'संपूर्णोपासनाद्ब्रह्मा संपूर्णानन्दभागभवेत् ।

इतरे तु यथायोगं सम्यङ् मुक्तौभवन्ति हि' इति पाद्मे ॥ 11 ॥

॥ इति सर्वाभेदाधिकरणम् ॥ 04 ॥

सर्वेषां मुमुक्षूणां कियन्नियमेनोपास्यमिति आह-

ॐ आनन्दादयः प्रधानस्य ॐ ॥ 12-377 ॥

प्रधानफलस्य मोक्षस्यार्थे आनन्दो ज्ञानं सदात्मेत्युपास्य एव ।

‘सच्चिदानन्द आत्मेति ब्रह्मोपासा विनिश्चिता ।

सर्वेषां च मुमुक्षूणां फलसाम्यादपेक्षिता’ इति ब्रह्मतर्के ॥ 12 ॥

॥ इति आनन्दाद्यधिकरणम् ॥ 05 ॥

ॐ प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरुपचयापचयौ हि भेदे ॐ ॥ 13-378 ॥

फलभेदार्थमुपचयापचययोर्भावान्न सर्वेषां प्रियशिरस्त्वादिगुणोपासाप्राप्तिः ।

‘नैव सर्वगुणाः सर्वैरुपास्या मुक्तिभेदतः ।

विरिञ्चस्यैव यन्मुक्तावानन्दस्य सुपूर्णता’ इति हि वाराहे ॥ 13 ॥

॥ इति प्रियशिरस्त्वाधिकरणम् ॥ 06 ॥

ॐ इतरे त्वर्थसामान्यात् ॐ ॥ 14-379 ॥

इतरे गुणाः फलसाम्यापेक्षयोपसंहर्थाः ॥ 14 ॥

॥ इति इतराधिकरणम् (फलसाम्याधिकरणम्) ॥ 07 ॥

उपसंहारानुपसंहारप्रमाणमाह –

ॐ आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ॐ ॥ 15-380 ॥

आध्यानार्थं हि सर्वे गुणा उच्यन्ते प्रयोजनान्तराभावात् ॥

‘ज्ञानार्थमथ ध्यानार्थं गुणानां समुधीरणा ।

ज्ञातव्याश्चैव ध्यातव्या गुणाः सर्वेऽप्यतो हरेः ॥

नान्यत् प्रयोजनं ज्ञानाध्यानात् कर्मकृतेरपि ।

श्रवणाच्चाथ पाठाद्वा विद्याभिः कञ्चिदिष्यते’ इति परमसंहितायाम् ॥

‘गुणाः सर्वेऽपि वेत्तव्या ध्यातव्याश्च न संशयः ।

नान्यत् प्रयोजनं मुख्यं गुणानां कथने भवेत् ॥

ज्ञानाध्यानसमायोगाद्गुणानां सर्वशः फलम् ।

मुख्यं भवेन्न चान्येन फलं मुख्यं क्वचिद्भवेत्’ इति ब्रह्मतन्त्रे ॥ 15 ॥

ॐ आत्मशब्दाच्च ॐ ॥ 16-381 ॥

'आत्मेत्येवोपासीत' इत्यनुपसंहारप्रमाणम् ॥ 16 ॥

॥ इति अध्यानाधिकरणम् ॥ 08 ॥

ॐ आत्मगृहीतिरितवदुत्तरात् ॐ ॥ 17-382 ॥

न च'आनन्दादयः प्रधानस्य' इत्युक्तिविरोधः । यतः'सत्यं ज्ञानमनन्तम् ब्रह्म। 'विज्ञानमानन्दम् ब्रह्म'
इतिवदेवात्मशब्दगृहीतिः ।

'अत्र ह्येते सर्व एकीभवन्ति' इत्युत्तरात् ।

'आनन्दानुभवत्वाच्च निर्दोषत्वाच्च भण्यते ।

नित्यत्वाच्च तथाऽऽत्मेति वेदवादिभिरीश्वरः' इति बृहत्तन्त्रे ॥ 17 ॥

॥ इति आत्मगृहीत्यधिकरणम् ॥ 09 ॥

ॐ अन्वयादिति चेत् स्यादवधारणात् ॐ ॥ 18-383 ॥

सर्वगुणानामान्वय आत्म शब्दे भवति ।

'आप्तव्याप्तेरात्मशब्दः परमस्य प्रयुज्यते'

इति वचनादिति चेत् सत्यम् । स्याच्चैवं । आत्मेत्येवेत्यवधारणात् । अन्यथा

सर्वोपसंहारवचनविरोधात् ॥ 18 ॥

॥ इति अन्वयाधिकरणम् ॥ 10 ॥

ॐ कार्याख्यानादपूर्वम् ॐ ॥ 19-384 ॥

'अलौकिकास्तस्य गुणा ह्युपास्य अलौकिकं मुक्तिकार्यं यतोऽस्य' इति कार्याख्यानादन्यत्रादृष्टा एव
गुणा उपास्याः ॥ 19 ॥

॥ इति कार्या(ख्यान)धिकरणम् ॥ 11 ॥

ॐ समान एवं चाभेदात् ॐ ॥ 20-385 ॥

अपूर्वत्वेऽपि समानानामेवोपसंहारः। न तु त्रिविक्रमत्वादीनां कादाचित्कानां पृथक्त्वेन ।

नित्यविक्रान्त्यादिष्वन्तर्भावात् ॥ 20 ॥

ॐ सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ॐ ॥ 21-386 ॥

परमात्मसम्बन्धित्वेन नित्यत्वात् त्रिविक्रमत्वादिष्वप्युपसंहार्यत्वं युज्यते।

‘गुणास्त्रैविक्रमाद्याश्च संहर्तव्या न संशयः ।

विरिञ्चस्यैव नान्येषां स हि सर्वगुणाधिकः’ इति ब्रह्मतन्त्रे ॥ 21 ॥

॥ इति समानाधिकरणम् ॥ 12 ॥

ॐ न वा विशेषात् ॐ ॥ 22-387 ॥

न वा ऽऽत्मशब्देन सर्वगुणगृहीतिः । अधिकारिविशेषात् ॥ 22 ॥

ॐ दर्शयति च ॐ ॥ 23-388 ॥

‘सर्वान् गुणानात्मशब्दो ब्रवीति ब्रह्मादीनामितरेषां न चैव’

इति भाल्लवेयश्रुतिः ॥ 23 ॥

॥ इति विशेषाधिकरणम्(नानाधिकरणम्) ॥ 13 ॥

ॐ सम्भृतिद्युव्याप्तपि चातः ॐ ॥ 24-389 ॥

सम्भृतिद्युव्याप्ती अपि देवादीनामुपसंहर्तव्ये नान्येषाम् । अत एव योग्यताविशेषात् ।

‘देवादीनामुपास्यास्तुभृतिव्याप्त्यादयो गुणाः ।

आनन्दाद्यास्तु सर्वेषामन्यथाऽनर्थकृद्भवेत्’ इति च ब्रह्मतर्के ॥ 24 ॥

॥ इति संभृत्यधिकरणम् ॥ 14 ॥

यस्यां विद्यायां महागुणा उच्यन्ते सोत्तमानामितराऽन्येषामिति

चेन्न –

ॐ पुरुषविद्यायामपि चेतरेषामनाम्नानात् ॐ ॥ 25-390 ॥

पुरुषसूक्तोक्तविद्यायामपि केषांचिद्गुणानामनाम्नानात् ।

‘सर्वतः पौरुषे सूक्ते गुणा विष्णोरुदीरिताः ।

तत्रापि नैव सर्वेऽपि तस्मात् कार्योपसंहृतिः’ इति ब्रह्मतर्के ॥ 25 ॥

॥ इति पुरुषविद्याधिकरणम् ॥ 15 ॥

ॐ वेधाद्यर्थभेदात् ॐ ॥ 26-391 ॥

‘भिन्धि विद्धि श्रुणीहीति फलभेदेन सर्वशः ।

यत्यादीनां तेष्वयोगान्नाधिकार्येकता भवेत् ।

अयोग्योपासनादीयुरनर्थं चार्थनाशनम्’ इति बृहत्तन्त्रे ॥

॥ इति वेधाद्यधिकरणम् ॥ 16 ॥

मुक्तस्योपासना कर्तव्या न वेत्यतो ब्रवीति –

ॐ हानौ तूपायनशब्दशेषत्वात् कुशाछंदस्तुत्युपगानवत् तदुक्तम् ॐ

॥ 27-392 ॥

नियतस्वाध्यायानन्तरं स्वेच्छया कुशाग्रहणस्तुत्युपगानवदेव मोक्ष उपासनादिः । ‘ब्रह्मविदाप्नोति परम्’ इति मोक्षवाक्यशेषत्वादितरेषाम् ॥ तच्चोक्तम् ‘एतत् सामगायन्नास्ते’ इत्यादि । ब्रह्मतर्के च-

‘मुक्ता अपि हि कुर्वन्ति स्वेच्छयोपासनं हरेः ।

नियमानन्तरं विप्राः कुशाद्यैरप्यधीयते’ इति ॥

‘कृष्णो मुक्यैरिज्यते वीतमोहैः’ इति च भारते ॥ 27 ॥

ॐ साम्परायेतर्तव्याभावात् तथा ह्यन्ये ॐ ॥ 28-393 ॥

स्वेच्छयैवेत्यङ्गीकर्तव्यम् । मुक्तस्य तीर्णत्वात् । ‘तीर्णो हि तदा सर्वा भवति’ इति ह्यन्ये पठन्ति ।

वायुप्रोक्ते च

‘स्थितप्रज्ञत्वमाप्ता ये ज्ञानेन परमात्मनः ।

ब्रह्मलोकं गताः सर्वे ब्रह्मणा च परं गताः ।

तीर्णतर्तव्यभागश्च स्वेच्छयोपासते परम्’ इति ॥ 28 ॥

॥ इति मुक्तोपासनाधिकरणम् (पा. हान्यधिकरणम्) ॥ 17 ॥

कर्मापि कुर्वन्ति न वेत्याह –

ॐ छन्दत उभयाविरोधात् ॐ ॥ 29-394 ॥

स्वेच्छया कुर्वन्ति न वा । बन्धप्रत्यवाययोरभावात् ॥ 29 ॥

ॐ गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा ह विरोधः ॐ ॥ 30-395 ॥

बन्धप्रत्यवायाभावे हि मोक्षस्यार्थवत्त्वम् । अन्यथा मोक्षत्वमेव न स्यात् ॥

‘कदाचित् कर्म कुर्वन्ति कदाचिन्नैव कुर्वते ।

नित्यज्ञानस्वरूपत्वान्नित्यं ध्यायन्ति केशवम् ॥

तीर्णतर्तव्यभागा ये प्राप्तानन्दाः परात्मनः ।

प्रत्यवायस्य बन्धस्याप्यभावात् स्वेच्छया भवेत्’ इति हि ब्रह्माण्डे ॥ 30 ॥

ॐ उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ॐ ॥ 31-396 ॥

उपपन्नश्चैवम्भावः । प्राप्तत्वात् तल्लक्षणस्य फलस्य । यथा लोके विद्यर्थत्वेन विष्णुक्रमणादिकं कृत्वा समाप्तकर्मेच्छया करोति न करोति च ॥ 31 ॥

इति छन्दादिकरणम्

ॐ अनियमः सर्वेषामविरोधाच्छब्दानुमानाभ्याम् ॐ ॥ 32-397 ॥

प्राप्तज्ञानानामपि केषांचिन्मुक्तिप्राप्तिः केषांचिन्न, यथोपसंहारनियम इति न मन्तव्यम् ।

‘सर्वगुणा ब्रह्मणैव ह्युपास्या नान्यैर्देवैः किमु सर्वैर्मनुष्यैः’

त्युपसंहारविरोधादन्यत्राविरोधात् ।

‘न कश्चिद्ब्रह्मवित् स्मृतिमनुभवति मुक्तो ह्येव भवति तस्मादाहुः स्मृतिहेति’ इति कौण्डिन्यश्रुतेश्च ।

यथा केषाञ्चिन्मोक्ष एवमन्येषामित्यनुमानाच्छ ॥ 32 ॥

॥ इति अनियमाधिकरणम् ॥ 19 ॥

ॐ यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् ॐ ॥ 33-398 ॥

यथा यथाऽधिकारो विशिष्यते एवं मुक्तावानन्दो विशिष्यते । ‘मनुष्येभ्यो गन्धर्वाणां गन्धर्वेभ्यः ऋषीणामृषिभ्यो देवानां देवेभ्य इन्द्रस्य इंद्राद्रुद्रस्य रुद्राद्ब्रह्मण एष ह्येव शतानन्दः’ इति चतुर्वेदशिखायाम् ।

अध्यात्मे च –

‘ज्ञानं चोपासनं चैव मुक्तावानन्द एव च ।

यथाधिकारं देवानां भवन्त्येवोत्तरोत्तरम् इति ॥ 33 ॥

ॐ अक्षरधियां त्वविरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत् तदुक्तम् ॐ

॥ 34-99 ॥

न चासमत्वेन विरोधो भवति । ब्रह्मधीत्वाद्दोषाभावसाम्यादुत्तमेभ्योऽन्येषां भावाच्च ।
औपसदवच्छिष्यवत् ।

उक्तं च तुरश्रुतौ –

‘नानाविधा जीवसङ्घा विमुक्तौन चैव तेषां ब्रह्मधियां विरोधः ।

दोषाभावाद्गुरुशिष्यादिभावाल्लोकेऽपि नासौ किमु तेषां विमुक्तेः’ इति ॥ 34 ॥

॥ इति यावदधिकाराधिकरणम् ॥ 20 ॥

ॐ इयदामननात् ॐ ॥ 35-400 ॥

नामाधारभ्य प्राणान्तमुत्तरोत्तरमुत्तमत्वमुक्तम् । न प्राणात् किञ्चिद्भूय उक्तम् । तथाऽपि पूर्ववत् स्यात्
इति न वाच्यम् ।

प्राणो वाव सर्वेभ्यो भूयान्न हि प्राणाद्भूयान् प्राणो ह्येव भूयांस्तस्माद्भूयान् नाम’ इति कौण्ठरव्यश्रुतेः

॥ 35 ॥

ॐ अन्तरा भूतग्रामवदिति चेत् तदुक्तम् ॐ ॥ 36-401 ॥

यथा भूतग्राम एकस्मादेक उत्तमोऽस्त्येव, एवं प्राणादपि परमात्मानमन्तरा विद्यत इति चेन्न ।

प्राणादुत्तमाभावे प्रमाणमुक्तम् । अन्यत्रोत्तमाभावे न प्रमाणम् । दृष्यते चान्यत्रोत्तमत्वम् ॥ 36 ॥

ॐ अन्यथा भेदानुपपत्तिरिति चेन्नोपदेशवत् ॐ ॥ 37-402 ॥

प्राणस्य सर्वोत्तमत्वे परमात्मना भेदानुपपत्तिरिति चेन्न । श्रुत्युपदिष्टवदुपपत्तेः । अन्येभ्यः

प्राणस्योत्तमत्वं तस्मात् परमात्मनो ह्युपदिष्टम् ॥ 37 ॥

॥ इति इयदामननाधिकरणम् ॥ 21 ॥

नेति चेन्न-

ॐ व्यतिहारो विशिषन्ति हीतरवत् ॐ ॥ 38-403 ॥

उक्तं प्राणात् परमात्मन उत्तमत्वं पूर्वोक्ताध्याहारेण'एष तु वा अतिवदति' इति विशिषन्ति हि । यथेतरेषु विशेषणम् ।
'उत्तमत्वं हि देवानां मुक्तावपि हि मानवात् । तेभ्यः प्राणस्य तस्माच्च नित्यमुक्तस्य वै हरेः' इति च ब्रह्मतन्त्रे ॥ 38 ॥
॥ इति व्यतिहाराधिकरणम् ॥ 22 ॥
कृतिर्निष्ठा ज्ञानमित्यादीनां भेदाद्ब्रह्म उत्तमा इति चेन्न –
ॐ सैव हि सत्यादयः ॐ ॥ 29-404 ॥
सत्यादिगुणास्तस्या एव परदेवतायाः स्वरूपभूताः । ब्रह्मतर्के च –
'नामादिप्राणपर्यन्ताद्यो हि सत्यादिरूपवान् । तस्मै नमो भगवते विष्णवे सर्वजिष्णवे' इति ॥ 'सत्याद्या अहमात्मान्ता यद्गुणाः समुदीरिताः । तस्मै नमो भगवते यस्मादेव विमुच्यते' इति चाध्यात्मे ॥ 39 ॥
॥ इति सत्याद्यधिकरणम् ॥ 23 ॥
प्रकृतेरपि जन्मादेः संसारप्राप्तेः किमिति नामादिष्वपाठ इत्यत्रोच्यते-
ॐ कामादितरत्र तत्र चायतनादिभ्यः ॐ ॥ 40-405 ॥
स्वेच्छयैव मूलस्थाने स्थिताऽन्यत्रावतारान् करोतीश्वरेच्छानुसारेण । 'सर्वायतना सर्वकाला सर्वेच्छा न बद्धाबन्धिका सैषा प्रकृतिरविकृतिः' इति वत्सश्रुतेः ।
'नामादयस्तु बद्धत्वान्मोचकत्वात् परोऽपि च । उभयोरप्यभावेन यथाऽव्यक्तं न तूदितम् ॥ श्रुतौ तथा जीवपरावुच्येते किञ्चिनेतरत् । नोच्यते च तदा तत्त्वद्वयं वै समुदाहृतम्' इति ब्रह्मतर्के ॥ 40 ॥
ॐ आदरादलोपः ॐ ॥ 41-406 ॥
अबद्धत्वेऽपि भक्तिविशेषादेवोपासनाद्यलोपस्तस्या भवति ।

‘यथा श्रीर्नित्यमुक्ताऽपि प्राप्तकर्माऽपि सर्वदा ।

उपास्ते नित्यशो विष्णामेवं भक्तो हरेर्भवेत्’ इति बृहत्तन्त्रे ॥ 41 ॥

ॐ उपस्थितेस्तद्वचनात् ॐ ॥ 42-407 ॥

अनादिकाले भगवत्सम्बन्धित्वाद्युज्यते च नित्यमुक्तत्वं तस्याः । ‘द्वावेतावनादिनित्यावनादियुक्तौ
नित्यमुक्तावनादिकृतौ नित्यकृतौ योऽयं परमो या च प्रकृती रमते ह्यस्यां परमो रमते ह्यस्मिन् प्रकृतिः
स्वस्मिन् हि रमते परमो न स्वस्मिन् प्रकृतिरत एनमाहुः परम इति’ इति गौपवनश्रुतिवचनात् ॥ 42 ॥

॥ इति कामाधिकरणम् ॥ 24 ॥

दर्शनार्थं ह्युपासनम् । तच्च श्रवणादेरेव भवति । अतः किमर्थमित्यत्रोच्यते-

ॐ तन्निर्धारणार्थनियमस्तदृष्टेः पृथग्ध्यप्रतिबन्धः पलम् ॐ ॥ 43-408 ॥

तत्त्वनिश्चयो वेदार्थनियमश्च ब्रह्मदृष्टेः पृथगेव । हिशब्देन आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो
निदिध्यासितव्य’ इति श्रुतिं सूचयति । श्रवणादिफलं चाज्ञानविपर्ययादिदर्शनप्रतिबन्धनिवृत्तिः ।
ब्रह्मतर्के च -

‘श्रुत्वा मत्वा तथा ध्यात्वा तदज्ञानविपर्ययौ ।

संशयं च पराणुद्य लभते ब्रह्मदर्शनम्’ इति ॥ 43 ॥

॥ इति निर्धारणाधिकरणम् ॥ 25 ॥

ॐ प्रदानवदेव हि तदुक्तम् ॐ ॥ 44-409 ॥

न च श्रवणादिमात्रेण ब्रह्मदृष्टिर्भवति, किन्तु सेतिकर्तव्येन । यथा गुरुदत्तं तथैव भवति । ‘आचार्यवान्
पुरुषो वेद’ इति ह्युक्तम् ॥ 44 ॥

॥ इति प्रदानाधिकरणम् ॥ 26 ॥

गुरुप्रसादः स्वप्रयत्नो वा बलवानिति निगद्यते-

ॐ लिङ्गभूयस्त्वात् तद्धि बलीयस्तदपि ॐ ॥ 45-410 ॥

ऋषभादिभ्यो विद्यां ज्ञात्वाऽपि सत्यकामेन भगवांस्त्वेव मे कामं ब्रूयात्’ श्रुतं ह्येव भगवद्दशेभ्य
आचार्याद्यैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति’ इति वचनात् । ‘अत्र ह न किञ्चन वीयाय’

इत्पनुज्ञानादुपकोसलवचनाच्च लिङ्गभूयस्त्वादुरुप्रदानमेव बलवत् । तर्हि तावताऽलमिति न मन्तव्यम् ।
'श्रोतव्यो मन्तव्यः' इत्यादेस्तदपि कर्तव्यम् । वाराहे च –

'गुरुप्रसादो बलवान्न तस्माद्वलवत्तरम् ।

तथाऽपि श्रवणादिश्च कर्तव्यो मोक्षसिद्धये' इति ॥ 45 ॥

॥ इति गुरुप्रसादाधिकरणम् (लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणम्) ॥ 27 ॥

ॐ पूर्वविकल्पः प्रकरणात् स्यात् क्रियामानसवत् ॐ ॥ 46-411 ॥

न च पूर्वप्राप्त एव गुरुरिति नियमः । समग्रानुग्रहं चेत् पश्चात्तनः करोति स्वयमेव तदा विकल्पः स्यात् ।
मानसक्रियावत्, यथोभयोर्ध्यानयोः समयोः ।

'पूर्वस्मादुत्तमो लब्धः स्वयमेव गुरुर्यदि ।

गृहीयादविचारेण विकल्पः समयोर्भवेत् ॥

समग्रानुग्रहाभावात् सत्यकामः स्वकं गुरुम् ।

ऋषभाद्यनुज्ञया चैष प्राप तस्माद्धि युज्यते' इति बृहत्तन्त्रे ॥

'समग्रानुग्रहं कश्चित् स्वयमेव समो यदि ।

कुर्यात् पुनश्च गृहीयादविरोधेन कामतः ॥

ध्यानयोः समयोर्द्वद्विकल्पः कामतो भवेत् ।

एवं गुरोर्द्वितीयस्य विकल्पो ग्रहणेऽपि च'

इति महासंहितायाम् ॥ 46 ॥

ॐ अतिदेशाच्च ॐ ॥ 47-412 ॥

'ब्रह्मोपास्त्व ब्रह्मोपचरस्व तच्छृणु हि तत्त्वामवतु । या ब्रह्मोपचरेर्यथा मामुपचरेर्ये चान्येऽस्मद्विधाः
श्रेयसश्च तानुपास्व तानुपचरस्व तेभ्यः शृणु हि ते त्वामवन्तु' इति पौष्यायणश्रुतावतीदेशाच्च ॥ 47 ॥

॥ इति पूर्वविकल्पाधिकरणम् ॥ 28 ॥

न च 'कर्मण्यैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः' इत्यादिनाऽन्यन्मोक्षसाधनम् ।

ॐ विद्यैव तु निर्धारणात् ॐ ॥ 48-413 ॥

'तमेवं विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय'

इति निर्धारणाद्विद्ययैव मोक्षः ॥ 48 ॥

ॐ दर्शनाच्च ॐ ॥ 49-414 ॥

न केवलं विद्यया किन्त्वपरोक्षज्ञानेनैव च।

सर्वान् परो माययाऽयं सिनीते दृष्ट्वैव तं मुच्यते नापरेण'

इति कौशिकश्रुतेः ॥ 49 ॥

॥ इति विद्याधिकरणम् ॥ 29 ॥

ॐ श्रुत्यादिबलीयास्त्वाच्च न बाधः ॐ ॥ 50-415 ॥

सावधारणा बलवति श्रुतिः ।

'इन्द्रोऽश्वमेधांश्चतमिद्धाऽपि राजा ब्रह्माणमीढ्यं समुवाचोपपन्नः ॥

न कर्मभिर्न धनैर्नैव चान्यैः पश्ये सुखं तेन तत्त्वं ब्रवीहि'

इति बलवल्लिङ्गम् ॥

'नास्त्यकृतः कृतेन' इत्युपपत्तिश्च ।

'कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।

तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः'

इति युक्तिमद्वगवद्वचनम् ॥

अतो न प्रमाणान्तरबाधः । 'कर्मण्यैव' इत्ययोगव्यवच्छेदः ॥ 50 ॥

॥ इति अबाधाधिकरणम् (श्रुत्याधिकरणम्) ॥ 30 ॥

ॐ अनुबन्धादिभ्यः ॐ ॥ 51-416 ॥

न केवलं श्रवणादिभिर्गुरुप्रसादेन च ब्रह्मदर्शनम् ।

किन्तु भक्त्यादिभिश्च ।

'सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वज्ञो विष्णुतत्परः ।

यद्गुरुः सुप्रसन्नः सन् दद्यात् तन्नान्यथा भवेत् ॥

तथाऽप्यनादिसंसिद्धो भक्त्यादिगुणपूगतः ।

लभेद्गुरुप्रसादं च तस्मादेव च तद्भवेत्' इति ॥

ॐ परेण शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात् त्वनुबन्धः ॐ ॥ 54-419 ॥

परमात्मैवं भक्त्या दर्शनं प्राप्य मुक्तिं ददातीति प्रधानसाधनत्वाद्भक्तिः करणत्वेनोच्यते। मायावैभवे च

‘भक्तिस्थः परमो विष्णुस्तयैवैनं वशं नयेत् ।

तयैव दर्शनं यातः प्रदद्यान्मुक्तिमेतया ॥

स्नेहानुबन्धो यस्तस्मिन् बहुमानपुरस्सरः ।

भक्तिरित्युच्यते सैव करणं परमीशितुः’ इति ॥

सर्वशब्दानां ब्रह्मणि प्रवृत्तेश्च ॥ 54 ॥

॥ इति ताद्विध्याधिकरणम् (परेणाधिकरणम्) ॥ 34 ॥

जीवांशानां पृथगुत्पत्तेर्नानादियोग्यतापेक्षेति न मन्तव्यम् । कुतः ?

ॐ एकः आत्मनः शरीरे भावात् ॐ ॥ 55-420 ॥

अंशांशिनोरेकत्वमेव । अंशिकर्मनिर्मितशरीर एवांशस्य भावात् ॥ 55 ॥

ॐ व्यतिरेकस्तद्भावभावित्वान्न तूपलब्धिवत् ॐ ॥ 56-421 ॥

ज्ञानादिभेदे विद्यमानेऽपि नांशांशिनोः पृथग्भाव एव । तदुपासनादिभोगादंशस्य । परमसंहितायां च

—

‘अंशिनस्तु पृथग्जाता अंशास्तस्यैव कर्मणा ।

पुनरैक्यं प्रपद्यन्ते नात्र कार्यं विचारणा’ इति ॥ 56 ॥

॥ इति एकाधिकरणम् ॥ 35 ॥

ॐ अङ्गावबद्धास्तुन शाखासु हि प्रतिवेदनम् ॐ ॥ 57-422 ॥

ब्रह्माद्यङ्गदेवतावबद्धोपासनादि प्रतिशाखं प्रतिवेदं च नोपसंहियते। हिशब्दात्

‘समत्वाद्बोत्तमत्वाद्वा नाङ्गदेवाद्युपासनम् ।

उपसंहार्यामित्याहुर्वेदसिद्धान्तवेदिनः’

इति ब्रह्मतर्कवचनात् ॥ 57 ॥

ॐ मन्त्रादिवद्वाऽविरोधः ॐ ॥ 58-423 ॥

सर्वदेवतामन्त्रा यथाऽधीयन्त एवमविरोधो वा ।

‘उपासनाङ्गदेवानां परमाङ्गतया भवेत् ।

उपसंहृतिर्विशेषे तु फलनामन्यथा न तु ॥

पुरुषाणां विशेषाद्वा यथायोगं भविष्यति’ इति बृहत्तन्त्रे ॥ 58 ॥

॥ इति अङ्गावबद्धाधिकरणम् ॥ 36 ॥

ॐ भूमः क्रतुवज्ज्यायस्त्वं तथा च दर्शयति ॐ ॥ 59-424 ॥

सर्वगुणेषु भूमगुणस्य ज्यायस्त्वं क्रतुवत् । सर्वत्र सहभावात् दीक्षाप्रायणीयोदयनीयसवनत्र
यावभृथात्मकः क्रतुः ।

‘भूमैव देवः परमो ह्युपास्यो नैवाभूमा फलमेषां विधत्ते ।

तस्माद्भूमा गुणतो वै विशिष्टो यथा क्रतुः कर्ममध्ये विशिष्टः ॥’

इति च गौपवनश्रुतिः ॥ 59 ॥

॥ इति भूमाधिकरणम् ॥ 37 ॥

ॐ नाना शब्दादिभेदात् ॐ ॥ 60-425 ॥

‘शब्दोऽनुमा तथैवाक्षो योग्यताभेदतः सदा ।

ब्रह्मादीनामेकमर्थं बहुधा दर्शयन्ति हि ॥

अतः पूर्णत्वमीशस्य वानैवैषां प्रदृश्यते ।

अतः फलस्य नानात्वं नानैवोपासनं यतः’ इति ब्रह्मतर्के ।

अतो भूमत्वमपि नानैवोपास्यते ॥ 60 ॥

॥ इति नाना(शब्दा)धिकरणम् ॥ 38 ॥

ॐ विकल्पो विशिष्टफलत्वात् ॐ ॥ 61-426 ॥

स्वयोग्योपासनानन्तरं सामान्यस्यापि कस्यचिदुपासनं विकल्पेन भवति विशिष्टफलापेक्षया ।

‘मुक्त्यर्थमात्मयोग्यं हि कार्यमेव ह्युपासनम् ।

नृसिंहादिकमन्यच्च दुरितादिनिवृत्तये ॥

उपास्यते यथायोगं न वा फलविभेदतः' इति च ब्रह्मतर्कः ॥ 61 ॥

॥ इति विकल्पाधिकरणम् ॥ 39 ॥

ॐ काम्यास्तुयथाकामं समुच्चीयेरन्न वा पूर्वहेत्वभावात् ॐ ॥ 62-427 ॥

'यस्य यस्य हि यः कामस्तस्य तस्य ह्युपासनम् ।

तादृशानां गुणानां च समाहारं प्रकल्पयेत् ॥

अकामत्वान्मुमुक्षूणां न वा तेषामुपासनम् ।

तुष्ट्यर्थमीश्वरस्यैव न चोपास विदुष्यति' इति बृहत्तन्त्रे ॥ 62 ॥

॥ इति काम्याधिकरणम् ॥ 40 ॥

ॐ अङ्गेषु यथाऽऽश्रयाभावः ॐ ॥ 63-428 ॥

अङ्गदेवतानां यथा यथा परमेश्वराङ्गाश्रयत्वं'चक्षोः सूर्यो अजायत' इत्यादि तथा भावना
कर्तव्या ॥ 63 ॥

ॐ शिष्टेश्च ॐ ॥ 64-429 ॥

'यस्मिन् यस्मिन् यो हि चाङ्गे निविष्टः परस्य चिन्त्यः स तथा तथैव'

इति पौत्रायणश्रुतेः ॥ 64 ॥

ॐ समाहारात् ॐ ॥ 65-430 ॥

'अङ्गैः पराद्ये हि देवा विसृष्टास्तत्तद्गुणान् परमे संहरेत।

तांश्चापि तत्रैव विचिन्त्य देवान् स्थानं मुमुक्षुः परमं व्रजेत'

इति काषायणश्रुतौ समाहारवचनाच्च ॥ 65 ॥

ॐ गुणसाधारण्यश्रुतेश्च ॐ ॥ 66-431 ॥

'साधारण्यात् सर्वगुणाः परस्य समाहार्यास्तत्त्वदृशो मुमुक्षोः'

इति माण्डव्यश्रुतेश्च ॥ 66 ॥

॥ इति यथाश्रयभावाधिकरणम् (अङ्गाधिकरणम्) ॥ 41 ॥

ॐ न वाऽतत्सहभावश्रुतेः ॐ ॥ 67-432 ॥

न वाऽङ्गदेवतोपसंहारः कार्यः । उपसंहारस्य सहाश्रवणात् ॥ 67 ॥

ॐ दर्शनाच्च ॐ ॥ 68-433 ॥

‘सत्यो ज्ञानः परमानन्दरूप आत्मेत्येवं नित्यदोपासनं स्यात् ।

नान्यत् किञ्चित् समुपासीत धीरः सर्वैर्गुणैर्देवगणा उपासते’

इति कमठश्रुतौ ॥ 68 ॥

॥ इति नवाधिकरणम् ॥ 42 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

03-03 ॥

चतुर्थः पादः ॥ 03-04 ॥

ज्ञानसामर्थ्यमस्मिन् पाद उच्यते –

ॐ पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः ॐ ॥ 01-434 ॥

यद्दर्शनार्थमुपासनोक्ता तस्माद्दर्शनात् सर्वपुरुषार्थप्राप्तिरिति बादरायणो मन्यते ।

‘यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धस्तत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ।

तं तं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः’ इति शब्दात् ॥ 01 ॥

ॐ शेषत्वात् पुरुषार्थवादो यथाऽन्येष्विति जैमिनिः ॐ ॥ 02-435 ॥

अस्त्येव मोक्षसाधनत्वं ज्ञानस्य । स्वर्गादिषु तत्साधनकर्मशेषत्वेन ।

‘स्वर्गं धनाद्देहतो वै गृहाच्च प्राप्स्यन्ति धीरा न त्वधीराः कुतश्चित्’ इतिवदति जैमिनिः ॥ 02 ॥

ॐ आचारदर्शनात् ॐ ॥ 03-436 ॥

ज्ञानिनामेव देवादीनामाचारदर्शनात् ॥ 03 ॥

ॐ तच्छ्रुतेः ॐ ॥ 04-437 ॥

‘यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति’

इति शेषत्वश्रुतेः ॥ 04 ॥

ॐ समन्वारम्भणात् ॐ ॥ 05-438 ॥

'कर्मैव देहं दैविकं मानुषं वाऽप्यन्वारभेन्नापरस्तत्र हेतुः ।

भोगांस्तदीयांश्च यथाविभागं ददाति कर्मैव शुभाशुभं यत्

इति माठरश्रुतेश्च ।

संशब्ध प्राधान्यं दर्शयति ॥ 05 ॥

ॐ तद्वतो विधानात् ॐ ॥ 06-439 ॥

'ज्ञानी च कर्माणि सदोदितानि कुर्यादकामः सततं भवेत्' इति कमठश्रुतौ ज्ञानतोऽपि विधानात्

॥ 06 ॥

ॐ नियमाच्च ॐ ॥ 07-440 ॥

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जीजीविषेच्छतं समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे' इति ॥ 07 ॥

ॐ अधिकोपदेशात् तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ॐ ॥ 08-441 ॥

'ज्ञानादेव स्वर्गो ज्ञानादेवापवर्गो ज्ञानादेव सर्वे कामाः सम्पद्यन्ते । तथापि यथा यथा कर्म कुरुते

तथा तथाऽधिको भवति'

इति कौण्ठरव्यश्रुतेः ॥

युधिष्ठिरादीनां राजसूयादिना फलाधिक्य दर्शनाच्चेति बादरायण मतम् ॥ 08 ॥

ॐ तुल्यम् तु दर्शनम् ॐ ॥ 09-442 ॥

राजसूयादिकृतावकृतौ च सममेव तेषां विज्ञानम् ।

'विज्ञातमेतत् सर्वेषां मुनीनां ब्रह्मदर्शनात् ।

स्यादेव मोक्षो नान्यस्मादिति तत्रापि चित्रता ॥

स्वर्गादयः कर्मणैव नान्येनेत्यपरे विदुः ।

ज्ञानेनाधिक्यमित्याहुर्जैमिन्याद्यास्तु केचन ॥

अदृष्टमेव ज्ञानेन दृष्टं नैवोपलभ्यते ।
इति केचिद्विदः प्राहुर्व्यासशिष्या इमेऽखिलाः ॥
यस्माद्वासमतं सर्वं सत्यमेव ततोऽखिलम् ।
यथाऽऽकाशस्त्वनन्तोऽपि व्यामो हस्तावदिस्तथा ।
प्रादेशोऽपि हि सत्येन तथैतेषां मतानि तु ॥
स्वयं तु भगवान् व्यासो व्याप्तज्ञानमहांशुमान् ।
अनन्ताकाशवत् पश्यन् निखिलं पुरुषोत्तमः ॥
ज्ञानेनैवाप्यते सर्वं कर्मणा त्वधिकं भवेत् ।
इति प्राह महायोगी पुमर्थानां विनिर्णयम् इति भविष्यत्पर्वणि ।
'ज्ञानिनामपि देवानां विशेषः कर्मभिर्भवेत् ।
चीर्णीऽकृते वा ज्ञानस्य न विशेषोऽस्ति कर्मणि' इति ब्रह्मतर्क ॥ 09 ॥

॥ इति पुरुषार्थाधिकरणम् ॥ 01 ॥

सर्वेषां पुरुषार्थापेक्षित्वाज्ज्ञानाधिकारतेत्यत आह –

ॐ असार्वत्रिकी ॐ ॥ 10-443 ॥

न सर्वेषामधिकारः ॥ 10 ॥

ॐ विभागः शतवत् ॐ ॥ 11-444 ॥

'नवकोट्यो हि देवानां तेषां मध्ये शतस्य तु ।
सोमाधिकारो वेदोक्तो ब्रह्मणी द्वे शताधिके ॥
यथा तथैवा सङ्ख्येयाः प्रजास्तासु कियान् जनः ।
ज्ञानाधिकारी सम्प्रोक्तो विष्णुपादैकसंश्रयः'

इति वचनात् सुखापेक्षासाम्येऽपि विभाग इष्यतेऽधिकारार्थम् ॥ 11 ॥

कस्याधिकारः ?

ॐ अध्ययनमात्रवतः ॐ ॥ 12-445 ॥

'अवैष्णवस्य वेदेऽपि ह्यधिकारो न विद्यते ।

गुरुभक्तिविहीनस्य शमादिरहितस्य च ॥

न च वर्णावरस्यापि तस्माद्ध्ययनान्वितः ।

ब्रह्मज्ञाने तु वेदोक्तेऽप्यधिकारी सतां मतः' इति ब्रह्मतर्क ॥

'पठेद्वेदानथार्थानधीयीताथ विचार्यः ब्रह्म विन्देत्'

इति च कौषारवश्रुतिः ॥ 12 ॥

॥ इति अधिकाराधिकरणम् (असार्वत्रिकाधिकरणम्) ॥ 02 ॥

ॐ नाविशेषात् ॐ ॥ 13-446 ॥

न सामान्येनाधिकारो देवादीनाम् ।

'अथ पुमर्थसाधनान्यर्थो धर्मो ज्ञानमित्युत्तरोत्तरम् ।

तत्राधिकारिणो मनुष्या ऋषयो देवा इत्युत्तरोत्तरम्'

इति कौण्डिन्यश्रुतिः ॥ 13 ॥

॥ इति अधिकारविशेषाधिकरणम् (अविशेषाधिकरणम्) ॥ 03 ॥

'अथ मुनिरमौनं च मौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात् तेनेदृश एव' इति

ज्ञानिनो यथेष्टाचरणं विधीयत इत्यत आह-

ॐ स्तुतयेऽनुमतिर्वा ॐ ॥ 14-447 ॥

न विधिः । ज्ञानिनः स्तुतये अनुमतिमात्रं वा । युज्यते च ॥ 14 ॥

ॐ कामकारेण चैके ॐ ॥ 15-448 ॥

'कामाचाराः कामभक्षाः कामवादाः कामेनैवेमं देहमुत्सृज्याथ परात् परमीयुरनारम्भणम्' इति चैके

पठन्ति ॥ 15 ॥

ॐ उपमर्दं च ॐ ॥ 16-449 ॥

'ओमित्युच्चार्यान्तरिममात्मानमभिपश्योपमृद्य पुण्यं च पापं च काममाचरन्तो ब्रह्मानुव्रजन्ति' इति च

तुरश्रुतौ ॥ 16 ॥

ॐ ऊर्ध्वरेतस्सु च शब्दे हि ॐ ॥ 17-450 ॥

न तावता कामचाराणां ज्ञानेऽधिकारः ।

‘य इमं परमं गुह्यमूर्ध्वरेतस्सु भाषयेत् ।

न तथा विद्यते भूयान् यं प्राप्यन्येऽपि भूयसः’

इति माठरश्रुतेः ॥ 17 ॥

ॐ परामर्शं जैमिनिरचोदना चापवदति हि ॐ ॥ 18-451 ॥

‘प्रातरुत्थायाथ सन्ध्यामुपासीत यत् सन्ध्यामुपासते ब्रह्मैव तदुपासतेऽथ देवान् नमेज्जुहुयाद्
वेदानावर्तयीत नान्यत् किञ्चिदाचरेन्न सुरां पिबेन्न पलाण्डुं भक्षयीत न भृषं वेदेन्न विस्मरेतात्मानं सोमं
पिबेद्दुतशेषेण वर्तयेत्’

इत्युक्ताचारपरामर्शेन विधिबन्धवर्जितत्वेन कामत एव तस्य चरणं कामचार इति जैमिनिर्मन्यते ।

न च निषिद्धं कर्म कर्तव्येमेवेति चोदना ।

‘ब्राह्मणो न हन्तव्यः’ इत्याद्यपवादश्च ॥ 18 ॥

ॐ अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः ॐ ॥ 19-452 ॥

अनुष्ठेयानां मध्य एव कामतश्चरणं कामतो निवृत्तिरेति बादरायणो मन्यते । ‘केन स्याद्येन स्यात्
तेनेदृश एव’ इति साम्यश्रुतेः ।

‘यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।

आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते’ इति भगवद्ब्रह्मचर्या ॥ 19 ॥

ॐ विधिर्वा धारणवत् ॐ ॥ 20-453 ॥

‘केन स्याद्येन स्यात्’ इति विधिर्वा । यथा वेदधारणं त्रैवर्णिकानां विहितं नान्येषाम् । एवं
स्वमतानुसारिणी प्रवृत्तिर्ज्ञानिनां विहिता । न तत्राधर्मशङ्का कार्या । नान्येषामिति वा ।

‘स्वेच्छयैव प्रवृत्तिस्तु ब्रह्मणो विधिचोदिता ।

नाशङ्क्यं तन्मतं कापि विष्णोः प्रत्यक्षचोदना ।

इतरेषां न विहिता स्वेच्छावृत्तिः कथञ्चन’ इति हि ब्राह्मे ॥ 20 ॥

ॐ स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात् ॐ ॥ 21-454 ॥

स्तुतिमात्रमेव स्वेच्छाचरणं न विधिः । तैरपि सामान्यविधिस्वीकारादिति चेन्न । अपूर्वत्वात्
परवशत्वात् । सर्वविध्यतिक्रमेण स्तुतिमात्रविषयत्वं परब्रह्मण एव हि ।

‘विधीनां विषयास्त्वन्ये ब्रह्मणः स्वेच्छया कृतौ ।

परस्य ब्रह्मणो ह्येव सर्वविधृतिदूरता’ इति च ब्रह्मतर्के ॥ 21 ॥

ॐ भावशब्दाच्च ॐ ॥ 22-455 ॥

‘यथाविधानमपरे विधिर्भावे प्रजापतेः ।

ब्रह्मणः परमस्यैव सर्वविद्यतिदूरता’ इति च तुरश्रुतौ ॥ 22 ॥

ॐ पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात् ॐ ॥ 23-456 ॥

‘केन स्याद्येन स्यात्’ इत्यादयः स्थिरत्वनिवृत्त्यर्था इति चेन्न ।

‘त्रेधा ह ज्ञानिनो विधिनियता अनियताः स्वेच्छानियता इति ।

विधिनियता मनुष्या अनियता हि देवा ब्रह्मैव स्वेच्छानियतः’

इति गौपवनश्रुतौ विशेषितत्वात् ॥ 23 ॥

ॐ तथा चैकवाक्योपबन्धात् ॐ ॥ 24-457 ॥

एवं सति विधिवाक्यानां स्वेच्छावृत्तिवाक्यानां च सम्बन्धो भवति ॥ 24 ॥

ॐ अत एव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ॐ ॥ 25-458 ॥

अत एव ज्ञानस्य मोक्षादेन नाग्निहोत्राद्यपेक्षा ।

ब्रह्मतर्के च –

‘येषां ज्ञानं समुत्पन्नं तेषां मोक्षो विनिश्चितः ।

शुभकर्मभिराधिक्यं विपरीतैर्विपर्ययः ॥

स्वेच्छानुवृत्त्यैव भवेद् ब्रह्मणः प्रायशस्तथा ।

देवानामपि सर्वेषां विशेषादुत्तरोत्तरम्’ इति ॥ 25 ॥

ॐ सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्वत् ॐ ॥ 26-459 ॥

सर्वधर्मापेक्षा च ज्ञानस्येत्पत्तौ ।

‘विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन’ इति श्रुतेः ।

यथा गतिनिष्पत्यर्थमश्वदयोऽपेक्ष्यन्ते न विनिष्पन्नगतेर्ग्रामादिप्राप्तौ ॥ 26 ॥

ॐ शमदमाद्युपेतः स्यात् तथाऽपितु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात्

ॐ ॥ 27-460 ॥

यद्यपि ज्ञानेनैव मोक्षो नियतस्तथाऽपि ज्ञानी शमदमाद्युपेतः
स्यात्। ‘आचार्याद्विद्यामवाप्यैतमात्मानमभिपश्य शान्तो भवेद्दान्तो भवेदनुकोलो भवेदाचार्यं परिचरेत्
परिचरेदाचार्यम्’ इति माठरश्रुतौ ज्ञानिनोऽपि तद्विधेः ।

‘ब्राह्मीं वाव त उपनिषदब्रूम’ इति ।

तस्यैतपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ।

यो वा एतामुपनिषदमेवं वेद’

इति ज्ञानाङ्गतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात् ।

‘यस्य ज्ञानं तस्य मोक्ष इति नात्र विचारणा ।

तस्य शान्त्यादयोऽङ्गानि तस्मात् तेषामनिष्ठितिः ॥

अवश्यकरणीया स्यादन्यथाऽल्पफलं भवेत्’ इति च आग्नेये ।

तु शब्दः पूर्णफलार्थत्वं सूचयति ॥ 27 ॥

ॐ सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात् ॐ ॥ 28-461 ॥

‘यदि ह वा अप्येवंविन्निखिलं भक्षयीतैवमेव स भवति’

इति सर्वान्नानुमतिः प्राणात्ययविषया ।

‘न वा अजीविष्यमिमानखादन्निति होवाच कामो म उदपानम्’ इति दर्शनात् ॥ 28 ॥

ॐ अबाधाच्च ॐ ॥ 29-462 ॥

‘अन्यायचरणाभावे न हि ज्ञानस्य बाधनम् ।

अतो विद्वानपि न्यायं वर्तेतोत्कर्षसिद्धये’ इति च ब्रह्मतर्के ॥ 29 ॥

ॐ अपि स्मर्यते ॐ ॥ 30-463 ॥

‘अतीतानागतज्ञानी त्रैलोक्योद्दरणक्षमः ।

एतादृशोऽपि नाचारं श्रौतं स्मार्तं परित्यजेत्’ इति हरिवंशेषु ॥ 30 ॥

ॐ शब्दश्चातोऽकामचारे ॐ ॥ 31-464 ॥

‘स य एतदेवंविदेवं मन्वान एवं पश्यन् न कामचरितं चरेन्न कामं भक्षयीत न कामामनुवर्तेत’ इति कौण्डिन्यश्रुतौ ।

अत इत्यल्पफलत्वं सूचयति ।

‘न निषिद्धानि वर्तेत पूर्णज्ञानफलेच्छया’ इति पाद्मे ॥ 31 ॥

ॐ विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि ॐ ॥ 32-465 ॥

न केवलं निषिद्धाकरणेन पूर्यते । कर्तव्यं च वर्णाश्रमविहितं कर्म ॥

‘पश्यन्नपीममात्मानं कुर्यात् कर्मविचारयन् ।

यदात्मानः सुनियतमानन्दोत्कर्षमाप्नुयात्’

इति कौषारवश्रुतौ विहितत्वाच्च । अपिशब्दो वर्णधर्मसमुच्चयार्थः ॥ 32 ॥

ॐ सहकारित्वेन च ॐ ॥ 33-466 ॥

‘यथा राज्ञः सहकार्येव मन्त्री तथाऽप्यृते तं क्षितिपः कार्यमृच्छेत् ।

एवं ज्ञानं कर्म विनाऽपि कार्यं सहायभूतं न विचारः कुतश्चित्’

इति कमठश्रुतौ सहकारित्वोक्तेश्च ।

‘ज्ञानान्मोक्षो भवेत्येव सर्वकार्यकृतोऽपि तु ।

आनन्दो हसतेऽकार्याच्छुभं कृत्वा तु वर्दते’ इति ब्रह्माण्डे ॥

सर्वदुःखनिवृत्तिश्च ज्ञानिनो निश्चितैव हि ।

उपासया कर्मभिश्च भक्त्या चानन्दचित्रता’ इति बृहत्तन्त्रे ॥

‘धर्मस्वरूपचित्रत्वाद्यो यो देवमनोगतः ।

स एव धर्मो विज्ञेयो न ह्येते लोकसम्मिताः’ इति च पाद्मे ॥ 33 ॥

॥ इति कामचाराधिकरणम् (स्तुत्यधिकरणम्) ॥ 04 ॥

ॐ सर्वथाऽपितु त एवोभयलिङ्गात् ॐ ॥ 34-467 ॥

सर्वप्रकारेणोत्साहेऽपि ये ज्ञानयोग्यास्त एव ज्ञानं प्राप्नुवन्ति नान्ये ।

‘य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः
सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः’

इति श्रुत्याऽऽचार्योपदेशसाम्येऽपि विरोचनो विपरीतज्ञानमापेन्द्रः सम्यज्ज्ञानमित्युभयविधलिङ्गात्
॥ 34 ॥

ॐ अनभिभवं च दर्शयति ॐ ॥ 35-468 ॥

‘दैवीमेव सम्पत्तिं देवा अभिगच्छन्त्यासुरीमेव चासुरा नैतयोरभिभवः कदाचित् स्वभाव एव
ह्यवतिष्ठन्ते’ इति स्वभावानभिभवं च दर्शयति ॥ 35 ॥

ॐ अन्तरा चापि तु तदृष्टेः ॐ ॥ 36-469 ॥

सम्यज्ज्ञानविपरीतज्ञानयोरन्तरा स्थितानामपि देवासुरभावयोर्दार्ढ्यदृष्टेः ॥ 36 ॥

ॐ अपि स्मर्यते ॐ ॥ 37-470 ॥

‘असुरा असुरेणैव स्वभावेन च कर्मणा ।
ज्ञानेन विपरीतेन तमो यान्ति विनिश्चयात् ॥
देवा दैवस्वभावेन कर्मणा चाप्यसंशयम् ।
सम्यज्ज्ञानेन परमां गतिं गच्छन्ति वैष्णवीम् ॥
नानयोरन्यथाभावः कदाचित् कापि विद्यते ।
मानुषा मिश्रमतयो विमिश्रगतयोऽपि च’ इति स्कान्दे ॥ 37 ॥

ॐ विशेषानुग्रहं च ॐ ॥ 38-471 ॥

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।

एदमानद्विच्छुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्’

इति विशेषानुग्रहं च दर्शयति देवेषु परमेश्वरस्य।

‘असुरान् दमयन् विष्णुः स्वपदं च सुरान् नयन् ।

पुनः पुनर्मानुषांस्तु सृतावावर्तयत्यसौ’ इति भविष्यत्पर्वणि ॥ 28 ॥

ॐ अतस्त्विदं ज्ञायो लिङ्गाच्च ॐ ॥ 39-472 ॥

देवभागादसुरभाग एव बहुलः । 'तस्मान्न जनतामियात्' इति लिङ्गात् । चशब्दात्

'ततः कनीयासा एव देवा ज्यायासा असुराः' इति श्रुतेश्च ।

'असुरा बहुला यस्मात् तस्मान्न जनतामियात्' इति च ब्राह्मे ॥ 39 ॥

ॐ तद्रूपस्य तु तद्भावो जैमिनेरपि नियमात्तद्रूपाभावेभ्यः ॐ ॥ 40-473 ॥

असुरजातेरेवासुरत्वं देवजातेरेव देवत्वं जैमिनेरपि सिद्धमेव ।

'नासुरा दैवीं न देवा आसुरीं न मनुष्या दैवीमासुरीं च गतिमीयुरात्मीयामेव जातिमनुभवन्ति' इति नियमश्रुतेः ।

'नासुराणां दैवं रूपं न देवानामासुरं न चोभयं मनुष्याणां यो यद्रूपः स तद्रूपो निसर्गो ह्येष भवति' इत्यतद्रूपत्वश्रुतेः ।

'तं भूतिरिति देवा उपासांचक्रिरे ते बभूवुस्तस्माद्वाऽप्येतर्हि सप्तो भूर्भूतित्येव प्रशस्वित्यभूतिरित्यसुरासेते ह परूभभूवुः' इति देवासुराणां भावाभावश्रुतेश्च ।

देवानां भूतिरित्येव मनो विष्णौ स्वभावतः ।

असुराणामभूतित्वेनैतन्नेयमतोऽन्यथा ॥

देवाः शापाभिभूतत्वात् प्रह्लादाद्या बभूवुरे ।

अतः सुगतिरेतेषां नान्यथा व्यत्ययो भवेत्' इति चाध्यात्मे ॥ 40 ॥

॥ इति उभयलिङ्गाधिकरणम् ॥ 05 ॥

ॐ न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात् तदयोगात् ॐ ॥ 41-474 ॥

न च परमात्मैश्वर्यादिकमाकाङ्क्षम्, ब्रह्मादीनामपु नाकाङ्क्ष्यं, किमुपरस्येति सूचयितुमपिशब्दः ।

चशब्दस्तु ज्ञानार्थीनां पूर्वोक्तादित्थम्भावान्तरसूचकः । अयोग्यमारोढुं प्रयतन् प्रपतन् हि दृश्यते ।

एवमयोगस्य परमात्मैश्वर्यस्य ब्रह्मादिपदस्य चाकाङ्क्षायां पतनमनुमीयते ।

'न देवपदमन्विच्छेत् कुत एव हरेर्गुणान् ।

इच्छन् पतति पूर्वस्मादधस्ताद्यत्र नोत्थितिः' इति ब्रह्माण्डे ।

ॐ आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रियते ॐ ॥ 45-478 ॥

सत्रयागेष्वृत्विजामपि फलदर्शनादल्पं फलं प्रजानामपि भवतीत्यौडुलोमिर्मन्यते । तर्धर्तं देवैः
क्रियमाणत्वात् ॥ 45 ॥

ॐ सहकार्यन्तरविधिःपक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ॐ ॥ 49-479 ॥

तृतीयः स्वपक्षः । देवानां ज्ञापनादिकर्मणि सहकार्यान्तरत्वेन प्रजा विधीयन्ते । यथा प्रजावतो राज्ञः
प्रजाः सहकारित्वेन विधीयन्ते । यथावाऽऽचार्यस्य शिष्याः । वाराहे च –

‘ज्ञानादिदानं देवानां विष्णुना साधु चोदितम् ।

वेदे च तेषां विहितं तत्राचार्यो महत्तरः ॥

विहितः सहकारित्वे सहकार्यान्तरं प्रजाः ।

पातृत्वेन यथा राज्ञो यथा शिष्या गुरोरपि ॥

तस्माच्छ्रुतं फलं तासामाचार्याणां महत्तरम् ।

ततो महत्तरं प्रोक्तं देवानामुत्तरोत्तरम् इति ॥ 46 ॥

॥ इति फलश्रुत्यधिकरणम् ॥ 07 ॥

ॐ कृत्स्नभावात् तु गृहिणोपसंहारः ॐ ॥ 47-480 ॥

‘कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विदधत्’ इत्युक्त्वा

‘न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते’ इति गृहिणोपसंहारः क्रियते

तस्माद्गृहस्तस्यैवोत्तवत्वमिति न वाच्यम् ।

यतः कृत्स्नगृहस्थान् देवानपेक्ष्यैवोपसंहारः क्रियते ।

‘कृत्स्ना ह्येते गृहिणो देवाः कृत्स्ना एते यतयोऽत एतेषां न पुत्रा दायमुपयन्ति स चैते गृहान्

विसृजन्त्यरागा अद्वेषा अलोभाः सर्वभोगाः सर्वज्ञाः सर्वकर्तारः’ इति पौत्रायणश्रुतिः ॥ 47 ॥

ॐ मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ॐ ॥ 48-481 ॥

न चाश्रमद्वयमेव देवानाम् ।

‘देवा एव ब्रह्मचारिणो देवा एव गृहस्था देवा एव वनस्था यथा ह्येते मुनय एवं सर्ववर्णाः सर्वाश्रमाः

सर्वं ह्येते कर्म कुर्वन्ति’ इति कौण्ठरव्यश्रुतौ यतित्वदृष्टान्तेनान्येषामप्युपदेशात् ॥ 48 ॥

॥ इति कृत्स्नभावाधिकरणम् ॥ 08 ॥

ॐ अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ॐ ॥ 49-482 ॥

‘एतां विद्यामदीत्य ब्रह्मदर्शी वाव भवति ।

स एतां मनुष्येषु विब्रूयात् ।

यथा यथा ह वै ब्रूयात् तथा तथाऽधिको भवति’

इति माठरश्रुतौ विद्यादानं श्रूयते । तच्च बहूनां स्वीकरणार्थमाविष्कारेणेति न मन्तव्यम् । अन्वयाद्युक्ते

। अविष्कारेऽयोग्यानामपि स्वीकारप्राप्तिः । तच्च विषिद्धम् –

‘मा नः स्तेनेभ्यो यो अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।

येषां नैतन्नापरं किं च नैकं ब्रह्मणस्पते ब्रूहि तेभ्यं कदाचित् ॥

अथोशमेनोपरता मनुष्याः ये धर्मिणो ब्रूहि तेभ्यः सदा नः ।

आदेवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः’ इति ।

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मां शेवदिस्तेऽहमस्मि ।

अनार्यकायानृजवे शठाय न मां ब्रूया ऋजवे ब्रूहि नित्यम्’ इति च ॥ 49 ॥

॥ इति अनाविष्काराधिकरणम् (अन्वयाधिकरणम्) ॥ 09 ॥

ॐ ऐहिकमप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात् ॐ ॥ 50-483 ॥

‘आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निधिध्यासितव्यः’

इति दर्शनार्थं श्रवणादि विधीयते । तच्च दर्शनमैहिकमेव प्रारब्धप्रतिबन्धाभावे ।

‘श्रुत्वाऽऽत्मानं मतिपूर्वं ह्युपास्येहैव दृष्टिं परमस्य विन्देत् ।

यद्यारब्धं कर्म निबन्धकं स्यात् प्रेत्यैव पश्येद्योगमेवान्ववेक्ष्य’

इति सौपर्णश्रुतौ दर्शनात् ।

‘अनादिजन्मसम्बन्धं निर्भेत्तुं पापपञ्जरम् ।

यावत्या सेवया शक्यं तावत् कार्यं न संशयः ॥

यावदूरे स्थितो गम्यात् तावद्गन्तव्यमेव हि ।

इह जन्मान्तरे वाऽपि तावत्यैव तु दर्शनम् ॥

श्रवणं मननं चैव निधिध्यासनमेव च ।

परे गुरौ च या भक्तिः परिचर्याधिकं हरेः ॥

एषा सेवेति सम्प्रोक्ता यथा तद्दर्शनं भवेत्

इति बृहत्संहितायाम् ॥ 50 ॥

॥ इति ऐहिकाधिकरणम् ॥ 10 ॥

ॐ एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्तदवस्थावधृतेः ॐ ॥ 51-484 ॥

एवमेव प्रारब्धकर्माभावे शरीरपातानन्तरमेव मोक्षः, तद्भावे जन्मान्तराणीत्यनियमः ।

‘धर्मी स्वर्गं विधर्मी निरयमेत्येव ब्रह्मसंस्थोऽमृतमेत्येव ब्रह्मसंस्थोऽमृतम्’ इति ब्रह्मसंस्थस्य
मोक्षस्यैवावधारणात् ।

‘विद्वानमृतमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।

अवसन्नं यदारब्दं कर्म तत्रैव गच्छति ॥

न चेद्ब्रह्मनि जन्मानि प्राप्यैवान्ते न संशयः’

इति च नारायणाध्यात्मे ॥ 51 ॥

॥ इति मुक्तिफलाधिकरणम् ॥ 11 ॥

॥ इति श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये तृतीयाध्यायस्य

चतुर्थः पादः ॥ 03-04 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये तृतीयाध्यायः (साधनाध्यायः)

॥ 03 ॥

चतुर्थाध्यायः (फलाध्यायः) ॥ 03-04 ॥

प्रथम पादः ॥ 04-01 ॥

फलं निगद्यतेऽस्मिन्नध्याये । कर्मनाशाख्यं फलमस्मिन् पादे ।

नित्यशः कार्यं सर्वथा भाव्यं साधनं प्रथमथ उच्यते ।

प्रायिकत्वाच्छाध्यायानां पादानां च न विरोधः ।

ॐ आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॐ ॥ 01-485 ॥

‘आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निधिध्यासितव्यः’

इत्यादीनां नाग्निष्टोमादिवदेकवारेणैव फलप्राप्तिः । किंत्वावृत्तिः कर्तव्या ।

‘स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वम्’

इत्याद्यसकृदुपदेशात् ॥ 01 ॥

ॐ लिङ्गाच्च ॐ ॥ 02-486 ॥

‘स तपोऽतप्यत..... पुनरेव वरुणं पितरमुपससार’

इत्याद्यावर्तनलिङ्गाच्च ।

‘नित्यशः श्रवणं चैव मननं ध्यानमेव च ।

कर्तव्यमेव पुरुषैर्ब्रह्मदर्शनमिच्छुभिः’ इत् बृहत्तन्त्रे ॥ 02 ॥

॥ इति आवृत्यधिकरणम् ॥ 01 ॥

ॐ आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॐ ॥ 03-487 ॥

आत्येत्युपदेश उपासनं च मोक्षार्थिभिः सर्वथा कार्यमेव । ‘नान्यं विचिन्तय आत्मानमेवाहं विजानीयामात्मनमुपास आत्मा हि ममैष भवति’ इति ह्युपगच्छन्ति । ‘आत्मेत्येवोपास्व आत्मेत्येव विजानीहि नान्यं किञ्चन विजानथ आत्मा ह्येवैष भवति’ इति ग्राहयन्ति च ।

‘आत्मेत्युपासनम् कार्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः ।

नानाक्लेशसमायुक्तोऽप्येतावन्नैव विस्मरेत्’ इति भविष्यत्पर्वणि ॥

‘आत्मा विष्णुरिति ध्यानं विशेषणविशेष्यतः ।

सर्वेषां च मुमुक्षूणामुपदेशश्च तादृशः ॥

कर्तव्यो नास्य हानेन कस्यचिन्मोक्ष इष्यते’ इति ब्राह्मे ॥ 03 ॥

॥ इति आत्मोपगमाधिकरणम् ॥ 02 ॥

ॐ न प्रतीके न हि सः ॐ ॥ 04-488 ॥

‘नाम ब्रह्मेत्युपास्ते’ इत्यादिना शब्दभ्रान्त्या न प्रतीके ब्रह्मदृष्टिः कार्या । किन्तु तत्स्थत्वेनैवोपासनं कार्यम् । ब्रह्मतर्के च –

‘नामादिप्राणपर्यन्तमुभयोः प्रथमात्वतः ।

ऐक्यदृष्टिरिति भ्रान्तिरबुधानां भविष्यति ॥

नामादिस्थितिरेवात्र ब्रह्मणो हि विधीयते ।

सर्वार्था प्रथमा यस्मात् सप्तम्यर्था ततो माता’ इति ॥ 04 ॥

॥ इति नप्रतीकाधिकरणम् ॥ 03 ॥

ॐ ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॐ ॥ 05-489 ॥

ब्रह्मदृष्टिश्च सर्वथा कार्यैव परमेश्वरे । उत्कृष्टत्वात् ।

‘ब्रह्मदृष्ट्या सदोपास्यो विष्णुः सर्वैरपि ध्रुवम् ।

महत्त्ववाची शब्दोऽयं महत्त्वज्ञानमेव हि ।

सर्वतः प्रीतिजनकमतस्तत् सर्वता भवेत् ॥

आत्मेत्येव यदोपासा तदा ब्रह्मत्वसंयुता ।

कार्यैव सर्वथा विष्णोर्ब्रह्मत्वं न परित्यजेत्’ इति ब्रह्मतर्के ॥ 05 ॥

॥ इति ब्रह्मदृष्ट्याधिकरणम् ॥ 04 ॥

ॐ आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः ॐ ॥ 06-490 ॥

‘चक्षोः सूर्यो अजायत’ इत्याद्युपासनं च देवानां कार्यमेव । स्वोत्पत्तिस्थानात् स्वाश्रयत्वान्मुक्तौ तत्र लयस्यापेक्षितत्वाच्चोपपन्नं तथोपासनम् । नारायणतन्त्रे च –

‘आधिव्याधिनिमित्तेन विक्षिप्तमनसोऽपि तु ।

गुणानां स्मरणाशक्तौ विष्णोर्ब्रह्मत्वमेव तु ॥

स्मर्तव्यं सततं तत् तु न कदाचित् परित्यजेत् ।

अत्र सर्वगुणानां च यतोऽन्तर्भाव इष्यते ॥

स्वोत्पत्त्यङ्गं च देवानां विष्णोश्चिन्त्यं सदैव तु ।

तेषां तत्र प्रवेशो हि मुक्तिरित्युच्यते बुधैः ॥

तदाश्रिताश्च ते नित्यं ततश्चिन्त्यं विशेषतः' इति ॥ 06 ॥

॥ इति आदित्यादिमत्यधिकरणम् ॥ 05 ॥

ॐ आसीनः सम्भवात् ॐ ॥ 07-491 ॥

सर्वदोपासनं कुर्वन्नप्यासीनो विशेषतः कुर्यात् ।

तदा विक्षेपाल्पत्वेन सम्भवात् ॥ 07 ॥

ॐ ध्यानाच्च ॐ ॥ 08-492 ॥

'स्मरणोपासनं चैव ध्यानात्मकमिति द्विधा ।

स्मरणं सर्वदा योग्यं ध्यानोपासनमानसे ॥

नैरन्तर्यं मनोवृत्तेर्ध्यानमित्युच्यते बुधैः ।

आसीनस्य भवेत् तत् तु न शयानस्य निद्रया ॥

स्थितस्य गच्छतो वाऽपि विक्षेपस्यैव सम्भवात् ।

स्मरणात् परमं ज्ञेयं ध्यानं नास्त्यत्र संशयः'

इति च नारायणतन्त्रे। अतो ध्यानत्वाच्च ॥ 08 ॥

ॐ अचलत्वं चापेक्ष्य ॐ ॥ 09-493 ॥

'अचलं चेच्छरीरं स्यान्मनसश्चाप्यचालनम्।

चलने तु शरीरस्य चञ्चलं तु मनो भवेत्' इति च ब्रह्माण्डे ॥ 09 ॥

ॐ स्मरन्ति च ॐ ॥ 10-494 ॥

'समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्' इत्यादि ॥ 10 ॥

ॐ यत्रैकाग्रता तत्रा विशेषात् ॐ ॥ 11-495 ॥

देशकालावस्थादिषु यत्रैकाग्रता भवति तत्रैव स्थातव्यम् ।

'तमेव देशं सेवेत तं कालं तामवस्थितिम् ।

तानेव भोगान् सेवेत मनो यत्र प्रसीदति ॥

न हि देशादिभिः कश्चिद्विशेषः समुदीरितः ।

मनप्रसाधनार्थं हि देशकालादिचिन्तना' इति वाराहे ॥ 11 ॥

॥ इति आसनाधिकरणम् ॥ 06 ॥

ॐ आ प्रायणात् तत्रापि हि दृष्टम् ॐ ॥ 12-496 ॥

यावन्मोक्षस्तावदुपासनादि कार्यम् ॥

'स यो ह वैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत'

इति हि श्रुतिः ॥

'सर्वदैवमुपासीत यावद्विमुक्तिर्मुक्ता अपि ह्येनमुपासते'

इति सौपर्णश्रुतिः ॥

'श्रुणुयाच्चावदज्ञानं मतिर्यावदयुक्तता ।

ध्यानं च यावदीक्षा स्यान्नेक्षा क्वचन बाध्यते ॥

दृष्टतत्त्वस्य च ध्यानं यदा दृष्टिर्न विद्यते ।

भक्तिश्चानन्तकालीना परमे ब्रह्मणि स्फुटा ।

आ विमुक्तेर्विधिर्नित्यं स्वत एव ततः परम्' इति ब्रह्माण्डे ॥ 12 ॥

॥ इति प्रायणाधिकरणम् ॥ 07 ॥

ॐ तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्यपदेशात् ॐ ॥ 13-497 ॥

ब्रह्मदर्शन उत्तराघस्याश्लेषः पूर्वस्य विनाशश्च ।

'तद्यथा पुष्करफलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते' । 'तद्यथैषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हैवास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते' इति तद्यपदेशात् ॥ 13 ॥

ॐ इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ॐ ॥ 14-498 ॥

पुण्यस्याप्येवमसंश्लेषः पाते। तुशब्दोऽनुत्थानवाची ।

'यथाऽश्लेषो विनाशश्च मुक्तस्य तु विकर्मणः ।

एवं सुकर्मणश्चापि पततस्तमसि ध्रुवम्' इति चाग्नेये ॥ 14 ॥

ॐ अनारब्दकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ॐ ॥ 15-499 ॥

अनारब्दकार्ये एव पूर्वे पुण्यपापे विनश्यतः ।

‘तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽत सम्पत्स्यते’ इति तदवधेः ।

तुशब्दः स्मृतिद्योतकः ।

‘यदनारब्दपापं स्यात् तद्विनश्यति निश्चयात् ।

पश्यतो ब्रह्म निर्द्वन्द्वं हीनं च ब्रह्म पश्यतः ॥

द्विषतो वा भवेत् पुण्यनाशो नास्त्यत्र संशयः ॥

तस्याप्यारब्दकार्यस्य न विनाशोऽस्ति कुत्रचित् ।

आरब्दयोश्च नाशः स्यादल्पयोः पुण्यपापयोः’

इति च नारायणतन्त्रे ॥ 15 ॥

ॐ अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ॐ ॥ 16-500 ॥

अग्निहोत्राद्यपि तु मोक्षेऽनुभावायैव । तुशब्दाद्ब्रह्मदर्शनवतः ।

‘स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाऽननूक्तोऽन्यद्वा कर्माकृतम् यदि ह वा अप्यनेवंविन्महत्पुण्यं कर्म करोति तद्दास्यान्ततः क्षीयत । एवात्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते न हास्य कर्म क्षीयतेऽस्माद्धेवात्मनो यद्यत् कामयते तत् तत्सृजते’ इति तद्दर्शनात् ॥ 16 ॥

ॐ अतोऽन्यदपीत्येकेषामुभयोः ॐ ॥ 17-501 ॥

मुक्तावनुभवकारणाद्यदन्यत् तत् पुण्यमपि विनश्यति, अप्रारब्दमनभीष्टं च तथा ह्येकेषां पाठ उभयोस्त्यागेन –

‘तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्’ इति ।

‘अनभीष्टमनारब्दं पुण्यमप्यस्य नश्यति ।

किमु पापं परब्रह्मज्ञानिनो नास्ति संशयः’ इति पाद्रे ॥ 17 ॥

ॐ यदेव विद्ययेति हि ॐ ॥ 18-502 ॥

ब्रह्मदर्शिकृतमल्पमपि पुण्यं महत्तममनन्तम् च भवति ।

‘यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति’ इति श्रुतेः ।

‘न हास्य कर्म क्षीयते’ इति च ।

‘अल्पमात्रकृतो धर्मो भवेद् ज्ञानवतो महान् ।

महानपि कृतो धर्मो ह्यज्ञानं निष्फलो भवेत्’ इति च भारते ॥ 18 ॥

ॐ भोगेन त्वितरे क्षपयित्वाऽथ सम्पत्स्यते ॐ ॥ 19-503 ॥

आरब्दपुण्यपापे भोगेन क्षपयित्वा ब्रह्म सम्पत्स्यते । अथेति नियमसूचकः ।

‘आरब्दपुण्यपापस्य भोगेन क्षपणादनु ।

प्राप्नोत्येव तमो घोरं ब्रह्म वा नात्र संशयः ॥

ब्रह्मणां शतकालात् तु पूर्वमारब्दसंक्षयः ।

नियमेन भवेन्नात्र कार्या काचिद्विचारणा’ इति च नारायणतन्त्रे ॥ 19 ॥

॥ इति तदधिगमाधिकरणम् ॥ 08 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये चतुर्थाद्यायस्य प्रथमः पादः ॥

04-01 ॥

द्वितीयः पादः ॥ 04-02 ॥

देवानां मोक्ष उत्क्रान्तिश्चास्मिन् पाद उच्यते –

ॐ वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ॐ ॥ 01-504 ॥

वाग्भिमानिन्युमा मनोऽभिमानिनि रुद्रे विलीयते । वाचो मनोवशत्वदर्शनात् । ‘तस्य यावन्न वाङ्मनसि सम्पद्यते’ इति शब्दाच्च ।

‘उमा वै वाक् समुद्दिष्टा मनो रुद्र उदाहृतः ।

तदेतन्मिथुनं ज्ञात्वा न दाम्पत्याद्विहीयते’ इति स्कान्दे ॥ 01 ॥

ॐ अत एव च सर्वाण्यनु ॐ ॥ 02-505 ॥

अत एव च शब्दात् सर्वाणि दैवतानि यथानुकूलं विलीयन्ते ।

‘अग्नौ सर्वे देवा विलीयन्तेऽग्निरिन्द्रे इन्द्र उमायामुमा रुद्रे विलीयते एवमन्यानि दैवतानि यथाऽनुकूलम्’ इति गौपवनश्रुतिः ॥ 02 ॥

॥ इति वाङ्मनसाधिकरणम् ॥ 01 ॥

ॐ तन्मनः प्राण उत्तरात् ॐ ॥ 03-506 ॥

'मनः प्राण' इत्युत्तराद्वचनान्मनोभिमानी रुद्रः प्राणे वायौ विलीयते ।

'वायोर्वाव रुद्र उदेति वायौ विलीयते तस्मादाहुर्वायुर्देवानां श्रेष्ठः' इति च कौण्डिन्यश्रुतिः ॥ 03 ॥

॥ इति मनोऽधिकरणम् ॥ 02 ॥

ॐ सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ॐ ॥ 04-507 ॥

स प्राणः परमात्मनि विलीयते ।

'सर्वे प्राणमुपगच्छन्ति प्राणः परमुपगच्छति प्राणं देवा अनुप्राणन्ति प्राणः परमानुप्राणिति

तस्मादाहुः प्राणस्य प्राण इति'

'प्राणः परस्यां देवतायाम्' ।

'मुक्ताः सन्तोऽग्निमाविश्य देवाः सर्वेऽपि भुञ्जते ।

'अग्निरिद्रं तथेन्द्रश्च वायुमाविस्य सोऽपि तु ।

आविश्य परमात्मानं भङ्गे भोगांस्तु बाह्यकान् ॥

न ह्यानन्दो निजस्तेषां परैर्लभ्यः कथञ्चन ।

किमु विष्णोः परानन्दो न ते विष्णुविति श्रुतेः ॥

प्राणस्य तेजसि लयो मार्गमात्रमुदाहृतम् ।

सर्वेशितुश्च सर्वादेस्तस्यान्यत्र लयः कथम्' इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यः ॥ 04 ॥

॥ इति अध्यक्षधिकरणम् ॥ 03 ॥

ॐ भूतेषु तच्छ्रुतेः ॐ ॥ 05-508 ॥

भेतेष्वन्येषां देवानां लयः ।

भूतेषु देवा विलीयन्ते भूतानि परे न पर उदेति

नास्तमेत्येकल एव मध्ये स्थाता' इति बृहच्छ्रुतेः ॥ 05 ॥

॥ इति भूताधिकरणम् ॥ 04 ॥

ॐ नैकस्मिन् दर्शयतो हि ॐ ॥ 06-509 ॥

नैकस्मिन् भूते सर्वेषां देवानां लयः । 'पृथिव्यामृभवो विलीयन्ते मरुणेऽश्विनावग्नावग्नयो वायविन्द्रः
सोम आदित्यो बृहस्पतिरित्याकाश एव साध्या विलीयन्ते । मृत्यवः पृथिव्यां वरुण
आपोऽग्नयस्तेजसि मरुतो मारुत आकाशे विनायका विलीयन्ते' इति महोपनिषच्चतुर्वेदशिरसा च
दर्शयतः । अतोऽग्नौ देवा विलीयते इत्यत्र निर्दिष्टानामेव ॥ 06 ॥

॥ इति अनेकलयाधिकरणम् (नैकस्मिन्नधिकरणम्) ॥ 05 ॥

ॐ समना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ॐ ॥ 07-510 ॥

देशतः कालतश्च व्याप्त्या समो ना परमपुरुषो यस्याः सा समना । संसारानुपक्रमात् स्वतः एवामृतत्वं
तस्याः । बृहच्छ्रुतिश्च –
'द्वौवाव सृत्यनुपक्रमौ प्रकृतिश्च परमश्च द्वावेतौ नित्यमुक्तौ नित्यौ च सर्वगतौ चैतौ ज्ञात्वा विमुच्यते'
इति । नैतावता साम्यम् ॥ 07 ॥

ॐ तदपीतेः संसारव्यपदेशात् ॐ ॥ 08-511 ॥

'समावेतौ प्रकृतिश्च परमश्च नित्यौ सर्वगतौ नित्यमुक्तावसमावेतौ प्रकृतिश्च परमश्च विलीनो हि प्रकृतौ
संसारमेति विलीनः परमे ह्यमृतत्वमेति' इति सौपर्णश्रुतेः ॥ 08 ॥

ॐ सूक्ष्मं प्रमाणतश्च तथोपलब्देः ॐ ॥ 09-512 ॥

सूक्ष्मत्वं चाधिकं ब्रह्मणः प्रकृतेः । ज्ञानानन्दैश्वर्यादिप्रमाणाधिक्यं च ।

'सर्वतः प्रकृतिः सूक्ष्मा प्रकृतेः परमेश्वरः ।

ज्ञानानन्दौ तथैश्वर्यं गुणाश्चान्येऽधिकाः प्रभोः' इति च तुरश्रुतिः ॥ 09 ॥

ॐ नोपमर्देनातः ॐ ॥ 10-513 ॥

अतस्तस्ये यो विशेषगुणास्तेषामनुपमर्देनैव साम्यम् ।

'देशतः कालतश्चैव समा प्रकृतिरीश्वरे ।

उभयोरप्यबद्धत्वं तदबन्धः परात्मनः ।

स्वत एव परेशस्य सा चोपास्ते सदा हरिम् ॥

<p>प्रकृतेः प्राकृतस्यापि ए गुणास्ते तु विष्णुना । नियता नैव केनापि नियता हि हरेर्गुणाः' इति भविष्यत्पर्वणि ॥ 10 ॥</p>
<p>ॐ अस्यैव चोपत्तेरूष्मा ॐ ॥ 11-514 ॥</p>
<p>'द्विधा हीदमवदृष्यते ऊष्मावदनूष्मावच्च । तत्रोष्मावत्परं ब्रह्म यन्न जिघ्रन्ति न पश्यन्ति न शृण्वन्ति न विजानन्ति । अथानूष्मावत्प्रकृतिश्च प्राकृतं च यन्न जिघ्रन्ति जिघ्रन्ति च यन्न पश्यन्ति पश्यन्ति च यन्न शृण्वन्ति शृण्वन्ति च यन्न जानन्ति जानन्ति च' इति सौपर्णश्रुतेः किञ्चित्साम्योपपत्ते ॥ 11 ॥</p>
<p>ॐ प्रतिषेधादिति चेन्न शरीरात् ॐ ॥ 12-515 ॥</p>
<p>'असमो वा एष परो न हि कश्चिदेवं दृश्यते सर्वे ह्येतेऽणवो जायन्ते च म्रियन्ते च छिद्रा ह्येते भवन्ति । अथ परो न जायते न म्रियते पूर्णश्चैष भवति' इति चतुर्वेदशिखायां साम्यप्रतिषेधान्नेति चेन्न । शरीराद्धि साम्यं प्रतिषिध्यते ॥ 12 ॥ कुतः ? -</p>
<p>ॐ स्पष्टो ह्येकेषाम् ॐ ॥ 13-516 ॥</p>
<p>'अथातः समाश्वासमाश्चाभिधीयन्ते समासमाश्चाथ समानि ब्रह्मणो रूपाणि यैरुत्पत्तिः स्थितिर्यो नियतिरायतिश्चैकं ह्येवैतद्भवत्यथासमा ब्रह्मेन्द्रो रुद्रः प्रजापतिर्बृहस्पतिर्ये के च देवा गन्धर्वा मनुष्याः पितरोऽसुरा यत्किञ्चेदं चरमचरं चाथ समाऽसमा प्रकृतिर्वाव समाऽसमैषा हि नित्याऽजरा तद्वशा च' इति स्पष्टो हि माध्यन्दिनायानानां समादिवादः ॥ 13 ॥</p>
<p>ॐ स्मर्यते च ॐ ॥ 14-517 ॥</p>
<p>'मत्स्यकूर्मवाराहाद्याः समा विष्णोरभेदतः । ब्रह्माद्यास्त्वमाः प्रोक्ताः प्रकृतिश्च समासमा' इति च वाराहे ॥ 14 ॥</p>
<p>॥ इति समनाधिकरणम् ॥ 06 ॥</p>
<p>ॐ तानि परे तथा ह्याह ॐ ॥ 15-518 ॥</p>
<p>प्राणद्वारेण सर्वाणि दैवतानि परमात्मनि विलीयन्ते । 'सर्वे देवाः प्राणमाविष्य देवे मुक्तालयं परमे यान्त्यचिन्त्ये'</p>

इति कौषारवश्रुतिः ॥ 19 ॥

॥ परा(लया)धिकरणम् ॥ 07 ॥

ॐ अविभागो वचनात् ॐ ॥ 16-519 ॥

‘एते देवा एतमात्मानमनुविश्य सत्याः सत्यकामाः सत्यसङ्कल्पा यथानिकाममन्तर्बहिः परिचरन्ति’

इति गौपवनश्रुतिः ।

तत्परमेश्वरकामाद्यविभागेनैव तेषां सत्यकामत्वम् ।

‘कामेन मे काम आगाद्धृदयाद्धृदयं मृत्योः’ इति वचनात् ।

‘मुक्तानां सत्यकामत्वं सामर्थ्यं च परस्य तु ।

कामानुकूलकामत्वं नान्यत् तेषां विधीयते’ इति ब्राह्मे ॥ 16 ॥

॥ अविभागाधिकरणम् ॥ 08 ॥

ॐ तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्

तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ॐ ॥ 17-520 ॥

उत्क्रान्तिकाले हृदयस्याग्र ज्वलनं भवति ।

‘तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते’ इति श्रुतेः ।

तत्प्रकाशितद्वारो निष्क्रामति । विद्यासामर्थ्यात् ।

‘यं यं वाऽपि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।

तम् तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः’ ॥

इति स्मृतेर्विद्याशेषगत्यनुस्मरणयोगाच्च ।

‘आचार्यस्तु ते गतिं वक्ता’ इति हि लिङ्गम् ।

‘हृदिस्थेनैव हरिणा तस्यैवानुग्रहेण तु ।

उत्क्रान्तिर्ब्रह्मरन्द्रेण तमोवोपासतो भवेत्’ इति चाध्यात्मे ।

‘शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।

तयोर्ध्वमायान्नमृतत्वमेति विष्वङ्गन्या उत्क्रमणे भवन्ति’ इति च ॥ 17 ॥

ॐ रश्म्यनुसारी ॐ ॥ 18-521 ॥

निष्क्रामति ।

‘सहस्रं वा आदित्यस्य रश्मय आसु नाडीष्वाततास्तत्र श्वेतः सुषुम्नो ब्रह्मयानः
सुषुम्नायामाततस्तत्प्रकाशेनैष निर्गच्छति’

इति हि पौत्रायणश्रुतिः ॥ 18 ॥

ॐ निशि नेति चेन्न सम्बन्धात् ॐ ॥ 19-522 ॥

रश्म्यभावान्निशि ज्ञानिना उत्क्रमणं न युक्तमिति चेन्न। सर्वदा संबन्धाद्रश्मीनाम् ॥ 19 ॥

कियत्कालम् ? –

ॐ यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च ॐ ॥ 20-523 ॥

यावद्देहो विद्यते तावद्रश्मिसम्बन्धोऽस्त्येव ।

‘संसृष्टा वा एते रश्मयश्च नाड्यश्च नैषां वियोगो

यावदिदं शरीरमत एतैः पश्यत्येतैरुत्क्रामत्येतैः प्रवर्तते’

इति हि माध्यन्दिनायनश्रुतिः ॥ 20 ॥

ॐ अतश्चायनेऽपि हि दक्षिणे ॐ ॥ 21-524 ॥

‘दक्षिणे मरणाद्याति स्वर्गं ब्रह्मोत्तरायणे’

इत्युक्तेऽपि ज्ञानिनो दक्षिणायनोत्क्रान्तिर्युज्यते ।

‘शतं पञ्चैव सूर्यस्य दक्षिणायनरश्मयः ।

तावन्त एव निर्दिष्टा उत्तरायणरश्मयः ॥

ते सर्वे देहसम्बद्धा सर्वदा सर्वदेहिनाम् ।

महर्लौकादिगन्तरा उत्तरायणरश्मिभिः ।

निर्गच्छन्तीतरैश्चापि यैरेष्टव्येतरा गतिः ॥

उत्तरं दक्षिणामिति त एव तु निगद्यते ।

न तु कालविशेषोऽस्ति ज्ञानिनां नियमात् फलम् ॥

ददाति कालेऽनुगुणे फलं किञ्चिद्विशिष्यते ।

अत्युत्तमानां केषांचिन्न विशेषोऽस्ति कालतः'

इति नारायणाध्यात्मे ॥ 21 ॥

॥ इति हृदयाग्रज्वलना(तदोकोऽ)धिकरणम् ॥ 09 ॥

ॐ योगिनः प्रति स्मर्येते स्मार्ते चैते ॐ ॥ 22-525 ॥

न केवलं कालादिकृते ब्रह्मचन्द्रगती स्मर्येते । किन्तु ज्ञानयोगिनः कर्मयोगिनश्च ।

'अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्मब्रह्मविदो जनाः ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासादक्षिणायनम् ।

तत्र चान्द्रमासं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते'

इत्यत्र योगीति विशेषणात् स्मरणनिमित्ते चैते गती ।

गत्यनुस्मरणाद्ब्रह्म चन्द्रं वा गच्छति ध्रुवम् ।

अननुस्मरतः काले स्मरणं प्राप्य वैगतिः' इति हि आध्यात्मे ॥ 22 ॥

॥ इति प्रतिस्मरणाधिकरणम् (योग्यधिकरणम्) ॥ 10 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

04-02 ॥

तृतीयः पादः ॥ 04-03 ॥

मार्गो गम्यं चास्मिन् पाद उच्यते –

ॐ अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ॐ ॥ 01-526 ॥

'तेऽर्चिषमभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह् आर्प्यमाणपक्षम्' इत्यर्चिषः प्राथम्यं श्रूयते । 'यदा ह वै

पुरुषोऽस्माल्लोकात् प्रैति स वायुमागच्छति' इति वायोः । तत्रार्चिषः प्राप्तिरेव प्रथमा ।

'द्वावेव मार्गौ प्रतिथावर्चिरादिर्विपश्चिताम् ।

धूमादिः कर्मिणां चैव सर्ववेदविनिर्णयात् ॥

अग्निर्ज्योतिरिति द्वेधैर्वाचिषः सम्प्रतिष्ठतिः ।

अग्निं गत्वा ज्योतिरेति प्रथमं ब्रह्म संव्रजन् ।

एकस्मिन्स्तुपुरे संस्थो द्विरूपोऽग्नेः सुतो महान् इति च ब्रह्मतर्के ॥

॥ इति अर्चिराद्यधिकरणम् ॥ 01 ॥

ॐ वायुशब्दादविशेषविशेषाभ्याम् ॐ ॥ 02-527 ॥

अर्चिषो वायुं गच्छति । 'स वायुमागच्छति' इति सामान्यवचनात् । 'स इतो गतो द्वितीयां गतिं वायुमागच्छति वायोरहरह् आपूर्यमाणपक्षम्' इति विशेषवचनाच्च ॥ 02 ॥

॥ इति वायुगत्यधिकरणम् ॥ 02 ॥

ॐ तटितोऽधिवरुणः सम्बन्धात् ॐ ॥ 03-528 ॥

'मासेभ्यः संत्सरं संवत्सराद्वरुणलोकं वरुणलोकात् प्रजापति लोकम्' इति कौण्डिन्यश्रुतिः ।

'संवत्सरात् तटितमागच्छति तटितः प्रजापतिलोकम्'

इति च गौपवनश्रुतिः ॥

'तत्र तटितो वरुणं गच्छति । तटिता ह्युह्यते वरुणलोकस्तटिदुपरि मुक्तामयो राजते तत्रासौ वरुणो राजा सत्यानृते विविञ्चति' इत्युपरिसम्बन्धश्रुतेः ॥ 03 ॥

॥ इति तटिदधिकरणम् ॥ 03 ॥

ॐ आतिवाहिकस्तलिङ्गात् ॐ ॥ 04-529 ॥

पूर्वोक्तस्त्वातिवाहिको वायुः । पूर्वगमनलिङ्गात् ॥ 04 ॥ कुतः ? -

ॐ उभयव्यामोहत् तत्सिद्धेः ॐ ॥ 05-530 ॥

'स वायुमागच्छति' इति प्रथममुच्यते । 'उत्क्रान्तो विद्वान् परमभिगच्छन् विद्युतमेवान्तत उपगच्छति द्यौर्वाव विद्युत् तत्पतिं वायुमुपगम्य तेनैव ब्रह्म गच्छति' इत्यन्तेऽपि वायुगमनश्रुतेः । पूर्वोक्त आतिवाहिकः परो वेति व्यामोहे उत्तरे दिवस्पतिरिति विशेषणात् पूर्वत्रातिवाहिकस्यैव सिद्धेः ब्रह्मतर्के च -

'उत्क्रान्तस्तु शरीरात् स्वाद्गच्छत्यर्चिषमेव तु ।

ततो हि वायोः पुत्रं च योऽसौनाम्नाऽऽतिवाहिकः ॥

ततोऽहः पूर्वपक्षं चाप्युदक्संवत्सरं तथा ।

तटितं वरुणं चैव प्रजापं सूर्यमेव च ॥

सोमं वैश्वानरं चेन्द्रं ध्रुवं देवीं दिवं तथा ।

ततो वायुं परं प्राप्य तेनैति पुरुषोत्तमम् इति ॥ 05 ॥

॥ इति अतिवाहिकाधिकरणम् ॥ 04 ॥

ॐ वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ॐ ॥ 06-531 ॥

प्रकारान्तरेण तत्र तत्रोच्यमानत्वाद्वायोरपि परतो ब्रह्मणोऽर्वागन्तव्योऽस्तीति नाशङ्कनीयम् ।

विद्युत्पतिना वायुनैव 'स एनान् ब्रह्म गमयति' इति ब्रह्मगमनश्रुतेः ।

'विद्युत्पतिर्वायुरेव नयेद्ब्रह्म न चापरः ।

कतोऽन्यस्य भवेच्छक्तिस्तमृते प्राणनायकम् इति बृहत्तन्त्रे ॥ 06 ॥

॥ इति वैद्युताधिकरणम् ॥ 05 ॥

ॐ कार्यं बादरिरस्यगत्युपपत्तेः ॐ ॥ 07-532 ॥

'स एनान् ब्रह्म गमयति' इति कार्यं गमयतीति बादरिर्मन्यते ।

'ऋते देवान् परं ब्रह्म कः पुमान् प्राप्नुयात् क्वचित् ।

यद्यपि ब्रह्मदृष्टिः स्याद्ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्'

इत्यध्यात्मवचनात् तस्यैव गत्युपपत्तेः ॥ 07 ॥

ॐ विशेषितत्वाच्च ॐ ॥ 08-533 ॥

'यदि ह वाव परमभिपश्यति प्राप्नोति ब्रह्माणं चतुर्मुखं प्राप्नोति ब्रह्माणं चतुर्मुखम्' इति कौषारवश्रुतौ

॥ 08 ॥

ॐ सामीप्यात्तद्व्यपदेशः ॐ ॥ 09-534 ॥

'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इति तद्व्यपदेशस्तु समीप एव परमपि प्राप्नोतीत्येतदर्थमेव ॥ 09 ॥

कदा ? –

ॐ कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ॐ ॥ 10-535 ॥

‘ते ह ब्रह्माणमभिसम्पद्य यदैतद्विलीयतेऽथ सह ब्रह्मणा परमभिगच्छन्ति’ इति सौपर्णश्रुतेर्महाप्रलये
तदध्यक्षेण ब्रह्मणा सह गच्छन्ति ॥ 10 ॥

ॐ स्मृतेश्च ॐ ॥ 11-536 ॥

‘ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ।
परस्यान्ते परात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्’ इति ॥ 11 ॥

ॐ परं जैमिनिर्मुख्यत्वात् ॐ ॥ 12-537 ॥

ब्रह्मशब्दस्य तत्रैव मुख्यत्वात् परमेव ब्रह्म गमयतीति जैमिनिर्मन्यते ॥ 12 ॥

ॐ दर्शनाच्च ॐ ॥ 13-538 ॥

दृष्टत्वाच्च परब्रह्मणः ॥ 13 ॥

ॐ न च कार्ये प्रतिपत्त्यभिसन्धिः ॐ ॥ 14-539 ॥

न हि कार्ये प्रतिपत्तिः प्राप्नवानीत्यभिसन्धिश्च ।
‘यदुपास्ते पुमान् जीवन् यत् प्राप्तुमभिवाञ्छति ।
यच्च पश्यति तृप्तः संस्तत् प्राप्नोति मृतेरनु’ इति पाद्मे ॥ 14 ॥

ॐ अप्रतीकालम्बनान् नयतीति बादरायण उभयथा च दोषात् तत्क्रतुश्च ॐ
॥ 15-540 ॥

‘प्रतीकं देह उद्दिष्टो येषां तत्रैव दर्शनम् ।
न तु व्याप्ततया कापि प्रतीकालम्बनास्तुते ॥
अप्रतीका देवतास्तु ऋषीणां शतमेव च ।
राज्ञां च शतमुद्दिष्टं गन्धर्वादि शतं तथा ॥
एतेऽधिकारिणो व्याप्तदर्शनेऽन्ये न तु क्वचित् ।
अयोग्यदर्शने यत्नाद्द्वंशः पूर्वस्य चापि तु ॥
अप्रतीकाश्रया ये हि ते यान्ति परमेव तु ।
स्वेदेहे ब्रह्म दृष्ट्यैव गच्छेद्ब्रह्मसलोकताम् ।

ब्रह्मणा सह सम्प्राप्ते संहारे परमं पदम् ॥

इति गारुडवचनात् उभयत्रोक्तदोषाच्चाप्रतीकालम्बनान् परं नयति ।

‘स यथाकामो भवति तत्कृतुर्भवति यत्कृतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते’ इति श्रुतेश्च । अत्र कर्मोपासनमेव । अन्यान् कार्यं नयतीति भगवन्मतम् ॥ 15 ॥

ॐ विशेषं च दर्शयति ॐ ॥ 16-541 ॥

‘अन्तःप्रकाशा बहिःप्रकाशाः सर्वप्रकाशाः । देवा वाव सर्वप्रकाशाः ऋषयोऽन्तःप्रकाशाः मानुषा एव बहिःप्रकाशाः’

इति चतुर्वेदशिखायाम् ॥ 16 ॥

॥ इति कार्याधिकरणम् ॥ 06 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीब्रह्मसूत्रभाष्ये चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

04-03 ॥

चतुर्थः पादः ॥ 04-04 ॥

भोगमाहास्मिन् पादे-

ॐ सम्पद्याविहाय स्वेन शब्दात् ॐ ॥ 01-542 ॥

‘स य एवंविदेवं मन्वान एवं पश्यन्नात्मनमभिसम्पद्यैतेनात्मना यथाकामं सर्वान् कामाननुभवति’ इति सौपर्णश्रुतिः ।

‘परञ्ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते’ इति च ।

‘एवं सेतुं तीर्त्वाऽन्धः सन्ननन्धो भवति’ इति च ।

तत्र तरणं नाम तत्प्राप्तयेऽन्यतरणमेव ।

‘इमां घोरामशिवां नदीं तीर्त्वेतं सेतुमाप्यैतेनैव सेतुना मोदते प्रमोदत आनन्दी भवति’ इति मौद्गल्यश्रुतेः ॥ 01 ॥

॥ इति सम्पद्याधिकरणम् ॥ 01 ॥

ॐ मुक्तः प्रतिज्ञानात् ॐ ॥ 02-543 ॥

मुक्त एव चात्रोच्यते ।

‘अहरहरेनमनुप्रविशत्युपसङ्कमते च न तत्र मोदते न प्रमोदते न कामाननुभवति बद्धो ह्येष तदा भवत्यथ यदैर्न मुक्तोऽनुप्रविशति मोदते च प्रमोदते च कामांश्चैवानुभवति । कामांश्चैवानुभवति’ इति बृहच्छ्रुतौ प्रतिज्ञानात् ॥ 02 ॥

॥ इति मुक्ताधिकरणम् ॥ 02 ॥

ॐ आत्मा प्रकरणात् ॐ ॥ 03-544 ॥

परञ्ज्योतिशब्देन परमात्मैवोच्यते । तत्प्रकरणत्वात् ।

‘परञ्ज्योतिः परं ब्रह्म परमात्मादिका गिरः ।

सर्वत्र हरिमेवैकं ब्रूयुर्नान्यं कथञ्चन’ इति च ब्रह्माण्डे ॥ 03 ॥

॥ इति आत्माधिकरणम् (आत्मसम्पद्यधिकरणम्) ॥ 03 ॥

ॐ अविभागेन दृष्टत्वात् ॐ ॥ 04-545 ॥

ये भोगाः परमात्मना भुज्यन्ते त एव मुक्तैर्भुज्यन्ते ।

‘यानेवाहं श्रुणोमि यान् पश्यामि यान् जिघ्रामि तानेवैत इदं शरीरं विमुच्यानुभवन्ति’ इति दृष्टत्वाच्चतुर्वेदशिखायाम् ।

भविष्यत्पुराणे च –

‘मुक्ताः प्राप्य परं विष्णुं तद्भोगान् लेशतः क्वचित् ।

बहिष्ठान् भुञ्जते नित्यं नानन्दादीन् कथञ्चन’ इति ॥ 04 ॥

॥ इति अविभागाधिकरणम् ॥ 04 ॥

ॐ ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॐ ॥ 05-546 ॥

सर्वदेहपरित्यागेन मुक्ताः सन्तो ब्राह्मेणैव देहेन भोगान् भुञ्जत इति जैमिनिर्मन्यते ।

‘स वा एष ब्रह्मनिष्ठ इदं शरीरं मर्त्यमतिसृज्य ब्रह्माभिसम्पद्य ब्रह्मणा पश्यति ब्रह्मणा श्रुणोति ब्रह्मणैवेदं सर्वमनुभवति’

इति माद्यन्दिनायनश्रुतावुपन्यासात् ।

‘आदत्ते हरिहस्तेन हरिदृष्ट्यैव पश्यति ।

गच्छेच्च हरिपादेन मुक्तस्यैषा स्थितिर्भवेत्’ इति स्मृतेः ॥

‘गच्छामि विष्णुपादाभ्यां विष्णुदृष्ट्या च दर्शनम् ।

इत्यादि पूर्वस्मरणान्मुक्तस्यैतद्भविष्यति’ इति बृहत्तन्त्रोक्तयुक्तेश्च ॥ 05 ॥

ॐ चितिमात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॐ ॥ 06-547 ॥

चितिमात्रो देहो मुक्तानां पृथग्विद्यते तेन भुञ्जते । सर्वं वा एतदचित् परित्यज्य चिन्मात्र एवैष भवति

चिन्मात्र एवावतिष्ठते तामेतां मुक्तिरित्याचक्षते’

इत्युद्दालकश्रुतेश्चिदात्मकत्वादित्यौडुलोमिर्मन्यते ॥ 06 ॥

ॐ एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॐ ॥ 07-548 ॥

‘स वा एष एतस्मान्मर्त्याद्विमुक्तश्चिन्मात्रीभवत्यथ तेनैव रूपेणाभिपश्यत्यभिश्चुणोत्यभिमनुतेऽ-

भिविजानाति तामाहुर्मुक्तिः’

इति सौपर्णश्रुतौ चिन्मात्रेणाप्युपन्यासाज्जैमिन्युक्तस्य च भावादुभयत्राप्यविरोधं बादरायणो मन्यते ।

नारायणाध्यात्मे च-

‘मर्त्यं देहं परित्यज्य चितिमात्रात्मदेहिनः ।

चितिमात्रेन्द्रियाश्चैव प्रविष्टा विष्णुमव्ययम् ॥

तदङ्गानुगृहीतैश्च स्वाङ्गैरेव प्रवर्तनम् ।

कुर्वन्ति भुञ्जते भोगांस्तदन्तर्बहिरेव वा ॥

यथेष्टं परिवर्तन्ते तस्यैवानुग्रहेरिताः’ इति ॥ 07 ॥

॥ इति चितिमात्राधिकरणम्(ब्रह्माधिकरणम्) ॥ 05 ॥

ॐ सङ्कल्पादेव च तच्च्युतेः ॐ ॥ 08-549 ॥

न तेषां भोगादिषु प्रयत्नापेक्षा ।

‘स यदि पितृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति’ इत्यादिश्रुतेः ॥ 08 ॥

॥ इति सङ्कल्पाधिकरणम् ॥ 06 ॥

ॐ अत एव चानन्याधिपतिः ॐ ॥ 09-550 ॥

सत्यसङ्कल्पत्वादेव ।

‘परमोऽधिपतिस्तेषां विष्णुरेव न संशयः ।

ब्रह्मादिमानुषान्तानां सर्वेषामविशेषतः ॥

ततः प्राणादिनामान्ताः सर्वेऽपि पतयः क्रमात् ।

आचार्याश्चैव सर्वेऽपि यैर्ज्ञानं सुप्रतिष्ठितम् ।

एतेभ्योऽन्यः पतिर्नैव मुक्तानां नात्र संशयः’ इति वाराहे ॥ 09 ॥

॥ इति अनन्याधिपतित्वाधिकरणम् ॥ 07 ॥

ॐ अभावं बादरिराह ह्येवम् ॐ ॥ 10-551 ॥

चिन्मात्रं विनाऽन्यो देहस्तेषां न विद्यत इति बादरिः ।

अशरीरो वाव तदा भवत्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतो याभ्यां ह्येष उन्मथ्यत’ इत्येवं

कौण्ठरव्यश्रुतावाह हि ॥ 10 ॥

ॐ भावं जैमिनिर्विकल्पाम्नानात् ॐ ॥ 11-552 ॥

‘स वा एष एवंवित् परमभिपश्यत्यभिष्टृणोति ज्योतिषैव रूपेण चित्ता वाऽचित्ता वा नित्येन वाऽनित्येन

वाऽथानन्दी ह्येवैष भवति नानानन्दं कश्चिदुपस्पृशति’

इत्यौद्दालकश्रुतौ विकल्पाम्नानादन्यदेहस्यापि भावं जैमिनिर्मन्यते ॥ 11 ॥

ॐ द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ॐ ॥ 12-553 ॥

यथा द्वादशाहः क्रत्वात्मकः सत्रात्मकश्च भवति । एवं मुक्तभोगो बाह्यशरीरकृतश्चिन्मात्रकृतश्च भवति

इति बादरायणो मन्यते ॥ 12 ॥

उपपत्तिश्च-

ॐ तन्वभावे सन्ध्यवदुपपत्तेः ॐ ॥ 13-554 ॥

सन्ध्यं स्वप्नः । ‘सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानम्’ इति श्रुतेः ॥ 13 ॥

ॐ भावे जाग्रद्वत् ॐ ॥ 14-555 ॥

ब्रह्मवैवर्ते च –

‘स्वप्नस्थानं यथा भोगो विना देहेन युज्यते ।

एवं मुक्तावपि भवेद्विना देहेन भोजनम् ॥

स्वेच्छया वा शरीराणि तेजोरूपाणि कानिचित् ।

स्वीकृत्य जागरितवद्भुक्त्वा त्यागः कदाचन’ इति ॥ 14 ॥

ॐ प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति ॐ ॥ 15-556 ॥

शरीरमनुप्रविश्यापि तत्प्रकाशयन्तः पुण्यानेव भोगाननुभवन्ति न तु दुःखादीन् । यथा प्रदीपो दीपिकादिषु प्रविष्टस्तत्स्थं तैलाद्येव भुङ्क्ते न तु तत्काष्यादि । ‘तीर्णा हि तदा सर्वाँछोकान् हृदयस्य भवति’ इति हि दर्शयति ॥ 15 ॥

न च स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति इत्यादिना स्वर्गादिस्थस्यैतदिति वाच्यम् । यतः –

ॐ स्वाप्यायसम्पत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ॐ ॥ 16-557 ॥

सुप्तौ मोक्षे वा तदुच्यते । ‘अत्र पिताऽपिता भवत्यनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन’ इत्याद्याविष्कृतत्वात् ॥

ब्रह्मवैवर्ते च-

‘ज्योतिर्मयेषु देहेषु स्वेच्छया विश्वमोक्षिणः ।

भुञ्जते सुसुखान्येव न दुःखादीन् कदाचन ॥

तीर्णा हि सर्वशोकांस्ते पुण्यपापादिवर्जिताः ।

सर्वदोषनिवृत्तास्ते गुणमात्रस्वरूपिणः’ इति ॥ 16 ॥

॥ इति उभयविधभोगाधिकरणम्(अभावाधिकरणम्) ॥ 08 ॥

ॐ जगद्ध्यापारवर्जम् ॐ ॥ 17-558 ॥

‘सर्वान् कामानात्वाऽमृतःसमभवत्’ इत्युच्यते । तत्र सृष्ट्यादिभ्योऽन्यान् व्यापारानाम्नोति ॥ 17 ॥

कुतः ? –

ॐ प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ॐ ॥ 18-559 ॥

जीवप्रकरणत्वाज्जीवानां तादृक्सामर्थ्यविदूरत्वाच्च । वाराहे च-



‘स्वाधिकानन्दसम्प्राप्तौ सृष्ट्यादिव्यापृतिष्वपि ।
मुक्तानां नैव कामः स्यादन्यान् कामांस्तु भुञ्जते ॥
तद्योग्यता नैव तेषां कदाचित् क्वापि विद्यते ।
न चायोग्यं विमुक्तोऽपि प्राप्नुयान्नच कामयेत्’ इति ॥ 18 ॥

ॐ प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः ॐ ॥ 19-560 ॥

‘ता यो वेद, स वेद ब्रह्म, सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति’

इति प्रत्यक्षोपदेशाज्जगदैश्वर्यमप्यस्तीति चेन्न ।
आधिकारिकमण्डलाधिपतिर्ब्रह्मा हि तत्रोच्यते ।

गारुडे च-

‘आत्मेत्येव परं देवमुपास्य हरिमव्ययम् ।
केचिदत्रैव मुच्यन्ते नोत्क्रामन्ति कदाचन ॥
अत्रैव च स्थितिस्तेषामन्तरिक्षे तु केचन ।
केचित् स्वर्गे महर्लोके जने तपसि चापरे ॥
केचित् सत्ये महाज्ञान गच्छन्ति क्षीरसागरम् ।
तत्रापि क्रमयोगेन ज्ञानाधिक्यात् समीपगाः ॥
सालोक्यं च सरूपत्वं सामीप्यं योग एव च ।
इमामारभ्य सर्वत्र यावत्सुक्षीरसागरे ॥
पुरुषोऽनन्तशयनः श्रीमन्नारायणाभिधः ।
मानुषा वर्णभेदेन तथैवाश्रमभेदतः ॥
क्षितिपा मनुष्यगन्धर्वा देवाश्च पितरश्चिराः ।
आजानजाः कर्मजाश्च तात्त्विकाश्च प्रजापतिः ॥
रुद्रो ब्रह्मेति क्रमशस्तेषु चैवोत्तरोत्तराः ।
नित्यानन्दे च भोगे च ज्ञानैश्वर्यगुणेषु च ।
सर्वे शतगुणोद्विक्ताः पूर्वस्मादुत्तरोत्तरम् ॥
पूज्यन्ते चावरैस्ते तु सर्वपूज्यश्चतुर्मुखः ।

स्वजगद्धापृतिस्तेषां पूर्ववत् समुदीरिता ॥
सयुजः परमात्मानं प्रविश्य च बहिर्गताः ।
चिद्रूपान् प्राकृतांश्चापि विना भोगांस्तु कांश्चन ।
भुञ्जते मुक्तिरेवं ते विस्पष्टं समुदाहृताः' इति ॥ 19 ॥

ॐ विकारावर्ति च तथाहि दर्शयति ॐ ॥ 20-561 ॥

विकारावर्तिव्यापारो मुक्तानां न विद्यते ।

'इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते' इति हि श्रुतिः ।

वाराहे च –

स्वाधिकारेण वर्तन्ते देवा मुक्तावपि स्फुटम् ।

बलिं हरन्ति मुक्ताय विरिञ्चाय तु पूर्ववत् ॥

सब्रह्मकास्तु ते देवा विष्णवे च विशेषतः ।

न विकाराधिकारस्तु मुक्तानामन्य एव तु ।

विकाराधिकृता ज्ञेया ये नियुक्तास्तु विष्णुना' इति ॥ 20 ॥

॥ इति सर्वकामाधिकरणम् (जगद्धापाराधिकरणम्) ॥ 09 ॥

ॐ स्थितिमाह दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने ॐ ॥ 21-562 ॥

'एतत् साम गायन्नास्ते' इत्युच्यते । तत्रानन्दादीनां वृद्धिर्हासश्च न विद्यते । एकप्रकारेणैव सर्वदा स्थितिः ।

'स एष एतस्मिन् ब्रह्मणि सम्पन्नो न जायते न म्रियते न हीयते न वर्धते स्थित एव सर्वदा भवति दर्शनेव ब्रह्म दर्शनेवात्मानं तस्यैवं दर्शयतो नापत्तिर्न विपत्तिः' इत्याह जाबालश्रुतौ ।

'यत्र गत्वा न म्रियते यत्र गत्वा न जायते ।

न हीयते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते' इति मोक्षधर्मे ॥

विद्वत्प्रत्यक्षात् कारणभावलिङ्गाच्च । ब्रह्मवैवर्ते च –

'न हासो न च वृद्धिर्वा मुक्तानां विद्यते क्वचित् ।

विद्वत्प्रत्यक्षसिद्धत्वात् कारणाभावतोऽनुमा ॥

हरेरुपासना चात्र सदैव सुखरूपिणी ।

न तु साधनभूता सा सिद्धिरेवात्र सा यतः' इति ॥ 21 ॥

ॐ भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ॐ ॥ 22-563 ॥

न च भोगविशेषादिविरोधः ।

'एतमानन्दमयमात्मानमनुविश्य न जायते न म्रियते न हसते न वर्धते यथाकामं चरति यथाकामं
पिबति यथाकामं रमते यथाकाममुपरमते'

इति भोगमात्रसाम्यलिङ्गात् ।

'अवृद्धिहासरूपत्वं मुक्तानां प्रायिकं भवेत् ।
कादाचित्कविशेषस्तु नैव तेषां विषिध्यते' इति कौर्मै ॥
'प्रवाहतस्तुवृद्धिर्वा हासो वा नैव कुत्रचित् ।
नाप्रियं किञ्चिदपि तु मुक्तानां विद्यते क्वचित् ॥
कुत एव तु दुःखं स्यात् सुखमेव सदोदितम् ।
भोगानां तु विशेषे तु वैचित्र्यं लभ्यते क्वचित्'

इति नारायणतन्त्रे ॥ 22 ॥

॥ इति स्थित्य(एकरूपा)धिकरणम् ॥ 10 ॥

ॐ अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॐ ॥ 32-564 ॥

'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते' , 'सर्वान् कामानास्वाऽमृतः समभवत् समभवत्' इत्यादिश्रुतिभ्यः
॥ 23 ॥

॥ इति अनावृत्यधिकरणम् ॥ 11 ॥

ज्ञानानन्दादिभिः सर्वैर्गुणैः पूर्णाय विष्णवे ।
नमोऽस्तु गुरवे नित्यं सर्वथाऽतिप्रियाय मे ॥
यस्य त्रीण्युदितानि वेदवचने रूपाणि दिव्यान्यलं
बट् तद्दर्शतमित्थमेव निहितं देवस्य भर्गो महत् ।
वायो रामवचोनयं प्रथमकं पृक्षो द्वितीयं वपु-

र्मध्वो यत् तु तृतीयकं कृतमिदं भाष्यं हरौ तेन हि ॥

नित्यानन्दो हरिः पूर्णो नित्यदा प्रीयतां मम ।

नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै च विष्णवे ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्ये चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः

॥ 04-04 ॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्रभाष्यम् ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

यो विप्रलम्बविपरीत मतिप्रभूतान् वादान् निरस्य कृतवान् भुवि तत्त्ववादम्।

सर्वेश्वरो हरिरिति प्रतिपादयन्तं आनन्दतीर्थमुनिवर्यमहं नमामि ॥

अस्मद्गुर्वतर्गत मनुनामक भारतीरमण मुख्यप्राणान्तर्गत श्री रुग्मिणी सत्यभामा

जाम्बवतीवल्लभ श्री कृष्णाय नमः

॥ प्रीणयामो वासुदेवं देवतामण्डलाऽखण्डमण्डनम् ॥

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु ॥